इकाई 3 मध्यकालीन नगरीकरण के अध्ययन संबंधी विचारधाराएं*

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 यूरोप में मध्यकालीन नगरों की धारणा

3.3 मध्यकालीन भारतीय नगरों संबंधी दृष्टिकोण

3.4 मध्यकालीन नगरवाद की धारणा

- 3.4.1 वाणिज्यिक और राजनीतिक रूप से अभिप्रेरित नगरवाद
- 3.4.2 नगरवाद और सूफी तथा भक्ति का प्रसार
- 3.4.3 पोलिसक्रेसी
- 3.4.4 पुर्तगाली नगरः पोलिसगार्किक

3.5 'नगर-राज्य'

3.6 सारांश

3.7 अभ्यास

3.8 संदर्भ ग्रंथ

3.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सूचक के रूप में नगरों का अर्थ विभिन्न ऐतिहासिक अवधियों और क्षेत्रीय संदर्भों में अलग-अलग होता है (शुल्ट्स, 1979: 15)। यद्यपि 'नगर' और 'नगर' शब्दावलियों का प्रयोग समय-वार विभेद के बिना अनेक लोगों द्वारा सभी ऐतिहासिक अवधियों के लिए किया जाता है, इतिहासकार निश्चित रूप से यह जानते हैं कि 'नगर' और 'नगर' के सार तत्व समय के साथ बदलते रहते हैं। दूसरे शब्दों में नगरीय केंद्र गतिहीन नहीं हैं, दूसरी ओर वे बदलती हुई बृहत् सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं, जिसके अंदर वे अपनी संरचना और स्वरूप धारण करते हैं, के आधार पर समय बीतने के साथ अपना अर्थ भी बदलते रहते हैं। उस भाव में वे सूक्ष्म जगत हैं जो बृहत् जगत को प्रतिबिम्बित करता है। इस तरह के बोध के कारण कुछ लोगों ने नगर या नगर को एक सामाजिक रूप में देखा जिसमें सामाजिक संबंधों की बृहत् प्रणालियों के अनिवार्य गुण स्पष्ट रूप से संकेन्द्रित और गहन थे (अब्राम्स, 1978 : 9-10)। यह बोध कि नगर बृहत सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं के परावर्तक हैं बहुत से लोगों को मध्यकालीन नगरों को प्राचीन कालीन नगरों और आधुनिक कालीन नगरों से भी कुछ अत्यधिक भिन्न रूप में देखने के लिए उत्प्रेरित करते हैं जहाँ पूरी तरह से भिन्न सामाजिक संबंध क्रियाशील थे।

---

* प्रो. पायस मालेकाण्डाथिल, सेटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह योगेश शर्मा और पायस मालेकाण्डाथिल (2014) द्वारा संपादित पुस्तक, *सिटीज इन मिडिवल इंडिया*, नई दिल्ली : प्राइमस बुक्स) की प्रस्तावना का संशोधित संस्करण है। उपर्युक्त पुस्तक से प्रस्तावना का प्रयोग करने देने के लिए हमें प्राइमस बुक्स के आभारी हैं।

3.2 यूरोप में मध्य कालीन नगरों की धारणा

यह तर्क देते हुए कि नगर समय बीतने के साथ हुए आर्थिक विकास के सूचक हैं, इतिहासकार और समाजशास्त्रीय तद्नुरूपी नगरीय प्रक्रियाओं की सूक्ष्म प्रवृत्ति को भी जानने का प्रयास करते रहे हैं। मैक्स वेबर ने प्राचीन ग्रीक या रोमन नगरों, जो मुख्यतः उपभोग के केंद्र थे, के विपरीत पाश्चात्य मध्यकालीन नगरों को उत्पादन के केंद्र के रूप में देखा। यह कहा जाता है कि ये मध्यकालीन नगर पश्चिम में पूंजीवाद के विकास के लिए प्रक्षेप स्थल बन गए। इस प्रक्रिया में उन्होंने उत्पादन की प्रक्रियाओं को विनिमय की प्रक्रियाओं से जोड़ दिया और साथ ही 'उपभोक्ताओं के हितों, जो पश्चिम में प्राचीनकाल के दौरान स्थिति थी, के ऊपर 'उत्पादकों' तथा 'व्यापारियों' के हितों को 'राजनीतिक तथा सांस्कृतिक' प्राथमिकता भी प्रदान की। मैक्स वेबर इन 'उत्पादकों' और 'व्यापारियों' की ओर से पश्चिम के मध्यकालीन नगरों में घटित हो रहे सत्ता के कुछ स्वरूपों के संघटन अथवा रूपान्तरण आदि सामाजिक कार्यकलापों के प्रकारों का भी उल्लेख करता है। मध्यकालीन पश्चिम के नगर निवासियों की रचना 'उत्पादकों' तथा 'व्यापारियों' से मिलकर हुई थी, उन्होंने अपने चारों ओर फैले वैध सामंती प्राधिकारियों पर अपनी निर्भरता को तोड़ डाला और कारीगरों तथा कृषकों, जिन्हें उन पर निर्भर रहने की जरूरत थी, पर स्वयं को अवैध रूप से ऊपर रख कर 'अवैध प्रभुत्व' स्थापित करने के लिए सत्ता हड़प ली। यह तर्कसंगत एसोसिएशनों और बर्गरों (burghers) के भाईचारों के सौजन्य से, जिन्होंने बाद में सत्ता हड़प ली और ऐसे भी संदर्भ थे जिनमें समृद्ध नागरिकों के निजी क्लबों ने नागरिकता प्रदान करने के अपने अधिकार के लिए दावा किया। तर्क आधारित आर्थिक क्रिया, व्यापार का स्वतंत्र संचालन और लाभ की तलाश को स्वीकृत करने वाले नगर की स्वायत्तता का वातावरण, जिसने अर्थव्यवस्था और सत्ता के प्रयोग दोनों ही क्षेत्रों में 'उत्पादकों' के हितों को संरक्षित किया, मध्यकालीन पश्चिमी नगरों में 'कार्य आचार' के विकास का साधक था (वेबर, 1966; वेबर, 1968 : 1212-1367; वुड, 2007 : 158-173; अब्राम्स, 1978 : 28-30)। मैक्स वेबर ने दलील दी कि जिसे एक आदर्श, पूर्ण नगरीय समुदाय समझा जाता है वह एक ऐसी बसावट थी जिसमें व्यापार-वाणिज्यिक संबंधों के सापेक्षिक पूर्व-प्रभुत्व तथा इसकी किलेबंदी, बाजार, इसके अपने न्यायालय तथा कम से कम अंशतः स्वायत्त कानून थे, इसमें एसोसिएशन का एक संबंधित स्वरूप और स्वायत्तता तथा स्वतंत्रता की अपेक्षित मात्रा भी थी जिसने बर्गरों के निवासियों (नागरिकों) को उन प्राधिकारियों के निर्वाचन, जिसने उन्हें शासित किया, को स्वीकृति देने को प्रदर्शित किया (वेबर, 1966 : 80-1; वेबर, 1968 : 1215-1231)। यह आदर्श लाक्षणिक संरचना थी जो बहुत ही अधिक यूरोप केंद्रित थी।

मध्यकालीन नगरों की सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर संक्रमण की प्रक्रिया में भूमिका तथा ठीक इसी प्रकार सामाजिक उद्भव के अनिवार्य घटक के रूप में नगरों में कामगार वर्ग की रचना का विषय भी लंबे समय तक जीवन्त अकादमिक वाद-विवाद का विषय रहा है। हेनरी पिरेन मध्यकालीन नगरों की प्रधानता और लंबी-दूरी के व्यापार को सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में देखते हैं तथा उनका विचार है कि ग्यारहवीं सदी के बाद से पश्चिमी यूरोप में वाणिज्यिक पुनरूद्धार के साथ यूरोपीय नगरों की ओर उन्मुख होने लगे (पिरेन 1956 : 81-110)। मॉरिस डॉब ने आरम्भिक तर्क दिया था कि मध्यकालीन नगरों के उत्थान और बाजारों के विकास ने सामंतवाद की संरचना पर विघटनकारी प्रभाव डाला था और 'उन शक्तियों को मजबूत किया जिसने इसे निर्बल किया तथा उखाड़ फेंका' (डॉब, 2007 : 70-1)। डॉब ने अपने इस विचार को पॉल स्वीज़ी, जिसने सामंतवाद के साथ नगरों की बाह्यता पर प्रश्न उठाया, से विवाद के पश्चात् संशोधित किया। इसके प्रत्युत्तर में मौरिस डॉब ने तर्क

दिया कि मध्यकालीन नगरों का उत्थान सामंत व्यवस्था की आंतरिक प्रक्रिया थी और उन्होंने इस बात को उजागर किया कि सामंतवादी सामाजिक संबंध 'लघु उत्पादन तथा विनिमय, जिसे स्वयं सामंतवाद ने सृजित किया था, की प्रक्रिया को रोकने' में अक्षम था। उन्होंने दर्शाया कि 'यह लघु उत्पादन पर प्रभुत्व स्थापित करने और व्यापार के लाभों को हस्तगत' करने के लिए सामंती व्यवस्था के अंदर विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष की प्रक्रिया थी' (स्वीजी, 2006 : 40; डॉब, 2007 : 59-61)। उसने मध्यकालीन नगरों को परतंत्र समाज के बीच एक नखलिस्तान के रूप में देखा जिसने दमित और शोषित ग्रामीण जनसंख्या के लिए स्वतंत्रता के चुम्बक के रूप में काम किया और उन्हें नगरों की ओर प्रवास के लिए प्रेरित किया (डॉब, 2007: 70)।

इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि पश्चिम में विभिन्न प्रकार के मध्यकालीन नगरों का उदय हुआ और यह कि सामंतवाद से संक्रमण को कार्यान्वित करने में उनका आर्थिक और राजनीतिक महत्व समान नहीं था। मध्यकालीन नगरों को एक श्रेणी में रखना त्रुटिपूर्ण साबित हुआ है। हेनरी पिरेन ने मध्यकालीन नगरों की दो अलग श्रेणियां चिन्हित की हैः (क) सामंत के अधीन नगर (Leige type) और (ख) फ्लेमिश नगर (Flemish) प्रकार के। सामंत के अधीन प्रकार के नगर मुख्यतः राजनीतिक सत्ता या बिशप का आवास (धार्मिक सत्ता) या उसकी अदालत की गतिविधियों का केन्द्र थे जहाँ की मुख्य जनसंख्या चर्च से संबंधित भद्र जनों, प्रशासकों और कुछ कारीगरों तथा सेवकों की थी जो उन्हें तैयार माल उपलब्ध कराते थे। फ्लेमिश प्रकार का नगर मुख्यतः आर्थिक इकाई थी जिस पर समृद्ध कुलीनतंत्र, जिसमें धनी व्यापारी और वित्तीय परिवार सम्मिलित थे, का शासन था। इन नगरों का उद्‌गम लंबी-दूरी की व्यापार चैनलों के समानान्तर हुआ और वे पुरानी रोमन बसावटों तथा चर्च संबंधी टाउनशिपों तथा सामंती किलेबंदियों के बाहर अवस्थित थे। इन नगरों के निवासियों के जीवनयापन की मुख्य धारा व्यापार था और इसके फलस्वरूप उन्होंने एक नए सामंतवाद-विरोधी शासक वर्ग के लिए आधार तैयार किया (पिरेन, 1956 : 55-100, 124-144, 160)।

फर्नान्ड ब्रॉडल का विचार है कि नगरों के विकास के क्रम में तीन बुनियादी प्रकार के नगर थेः (क) मुक्त नगर जो अपने आंतरिक भू-भाग से भिन्न नहीं थे और कभी-कभी इसमें मिश्रित भी होते थे, जैसा कि प्राचीन ग्रीस और रोम में देखा गया था। मुक्त नगरों में सत्ता का बड़ा हिस्सा कृषक जगत की संरचनाओं के पास था। (ख) दूसरे प्रकार में आरक्षित नगर थे जो आत्मनिर्भर इकाइयों थीं और 'प्रत्येक दृष्टि में अपने आप में रक्षित थीं' और 'इन नगरों की दीवारें एक भू-भाग की अपेक्षा एक व्यक्तिगत जीवन शैली की सीमाओं का परिचायक थीं', जैसा कि हम मध्यकालीन नगरों के संदर्भ में देखते हैं। एक किसान ने सामंती दासता से भागने के लिए जिस क्षण मध्यकालीन नगर की प्राचीरों को पार कर नगर की चहारदीवारी वाले स्थान में प्रवेश किया, उसे अपनी दासता से मुक्ति मिली और वह स्वतंत्र हो गया। अब सामंत उसे छू तक नहीं सकता था। इन नगरों में उस नगर के अंदर रहने वाले लोगों द्वारा सत्ता को सापेक्षिक रूप से हस्तगत कर लिया गया था। (ग) तीसरे प्रकार में अधीनस्थ नगर शामिल थे जो राजाओं और राज्य के पराधीन थे जैसा कि फ्लोरेंस जैसे पूर्व आधुनिक नगरों के संदर्भ में है जिसे मैडिसिस ने अधीन किया था या पेरिस जिसे बूरबॉन (Bourbon) शासकों ने अपनी राजधानी बनाया। संरक्षित नगरों या व्यापारिक नगरों को इस रूप में देखा गया मानों उन्होंने ही पाश्चात्य यूरोप को आर्थिक दृष्टि में प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाया (ब्रॉडेल, 1973: 401-6, अब्राम्स, 1978: 24-5)।

एक महत्वपूर्ण लक्षण जिसके द्वारा किसी नगर को गांव से अलग किया जा सकता है, वह

श्रम विभाजन की प्रकृति है, इतिहासकारों ने मध्यकालीन नगरों में भी श्रम प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया है। यद्यपि सिद्धान्तः फर्नान्ड ब्रॉडेल सहमत है कि व्यापारी, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक नियंत्रण संबंधी प्रकार्य और शिल्प क्रियाकलाप नगरों के प्रमुख लक्ष्य हैं लेकिन उनका विचार था कि इन क्रियाकलापों का सम्पूर्ण विस्तार केवल बड़े नगरों में ही दिखाई देता था न कि छोटे नगरों में जहाँ जनसंख्या सीमित थी (अब्राम्स, 1978ः 376)। वास्तव में मध्यकालीन नगरों में श्रम प्रक्रिया उतनी सघन और जटिल नहीं थी जितनी कि हम आधुनिक नगरों में पाते हैं जिनका उत्थान औद्योगिक पूंजीवाद के साथ हुआ। इतना ही नहीं, मध्यकालीन नगरों से भिन्न औद्योगिक पूंजीवाद में जिस प्रकार की सामाजिक प्रवृत्ति का प्रकार प्रकट हुआ उसने पुलिस व्यवस्था, सड़क योजनाओं, दुकानों के लिए निर्धारित स्थान, परिवहन के जाल, नामांकित और पृथक पड़ोस, राजनीतिक सत्ता की संस्थिति, स्वच्छता और स्वास्थ्यचर्या इत्यादि के द्वारा आधुनिक प्लान्ड नगरों के अभ्युदय को आवश्यक बना दिया। नियंत्रण के विभिन्न स्वरूप जो औद्योगिक पूंजीवाद के पश्चात् नगरीय स्थलों पर ऊपर लागू किए गए और जिस तरह से आज आधुनिक नगरों में पाए जाते हैं, मध्यकालीन नगरों में नहीं देखे जा सकते।

हाल ही में मध्यकालीन नगरों को सांस्कृतिक संरचना के रूप में देखने का प्रयास किया गया है और सांस्कृतिक निर्माणों के रूप में नगरीय पहचानों तथा नगर-स्वरूपों की शुरूआत की गई जो लगातार नवीनीकृत और संशोधित होते रहे। नगरीय समुदायों का उनकी सामुदायिक भागीदारी, विदेशी संस्कृतियों के साथ संघर्ष, बहुलवादी समाजों की संरचना, द्वि या बहु निष्ठा तथा बहु संबद्धता के कारण उनके सांस्कृतिक निर्माण के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है।

अनेक इतिहास से संबंधित भूगोलिविद् और इतिहासकार तर्क देते हैं कि नगरीय इकाइयों के निर्माण में सम्मिलित स्थानिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण और अध्ययन उनसे मानवीय निर्माताओं (एजेंटों) के उद्देश्य तथा उनकी पूर्ति की सीमा का पता लगाने के लिए किया जा सकता है। मिशेल फूको, हेनरी लेफेब्र, एडवर्ड सोजा ने इन 'स्थानों के निर्माण' से संबंधित अध्ययनों द्वारा इनकी ओर पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया है (फूको, स्प्रिंग, 1986ः 22-27; फूको, राइट और रेनबो, 1982ः 14-20; लेफेब्र, 1991ः सोजा, 1989)। इतिहास से संबंधित भूगोलविद् तर्क देते हैं कि स्थानिक प्रक्रिया कुछ ऐसी हैं, जो संयोगवश नहीं होती है, 'अपितु निश्चित प्रयोजन से और तर्क के साथ होती हैं। उनका विचार है कि "स्थल", विशेषकर नगरीय स्थल, अभिप्रायपूर्ण अर्थ से आवेषित होता है और दर्शाता है कि किस प्रकार सत्ता और प्रभुत्व नगरीय स्थल में चिन्हित हैं (हार्वी, 2001; ग्रेगरी, 2000 : 644-646; हार्वी, 1973; हार्वी, 1985; हार्वी 2007)। स्थानिकीकरण मूलभूत परिवर्तीकारक के रूप में 'स्थल' पर ध्यान केंद्रित करता है जो समाज के संगठन तथा गतिविधियों और साथ ही इसके व्यक्तिगत सदस्यों के व्यवहार दोनों को प्रभावित करता है (कॉक्स, 1976ः 187-207)। इस प्रकार का अध्ययन इस मान्यता से उत्पन्न होता है कि मनुष्य भू-दृश्य में बार-बार परिवर्तन करके अस्तित्व की भौतिक प्रक्रिया में भौगोलिक संरचना पर छाप छोड़ता है और कि भू-दृश्य के ऐतिहासिक अध्ययन द्वारा कोई मानवीय कार्यकलापों के संदर्भ को पढ़ सकता है तथा इसके पीछे के मानवीय चिंतन का पता लगा सकता है। मिशेल फूको, जिन्होंने सत्ता को स्थल में उत्कीर्ण पाया, का दृढ़ विश्वास था कि समाज में सत्ता का विश्लेषण स्थल के ऊपर नियंत्रण के विश्लेषण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है (फूको, 1980 : 76-77; बेकर, 2003 : 65)। इतिहास से संबंधित भूगोलवेत्ता और इतिहासकार अब निजी और सार्वजनिक स्थानों, पवित्र और लौकिक स्थानों, वाणिज्यिक और आनुष्ठानिक स्थानों, साझा और विभाजित स्थानों, पुरूष और स्त्री स्थानों तथा व्यक्तिगत और संस्थागत स्थानों के बीच विभेद करते हैं तथा वे स्वीकार करते हैं कि स्थान प्रतिस्पर्धी संसाधन हैं जिन पर व्यक्ति और समूह अपनी शक्ति के प्रदर्शन के रूप में

नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं (प्लोज़ास्का, 1994 : 413-429; मालेकन्डाथिल, 2009 : 13-38)।

समाजशास्त्रियों और नगरीय इतिहासकारों का दृढ़ विचार है कि नगरीकरण की प्रक्रिया के अध्ययन को जनसंख्या, सामाजिक संगठन, भौतिक परिवेश और प्रौद्योगिकी पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। नगरीय परिवर्तन की प्रक्रिया तब आरम्भ होती है जब बदलते हुए सामाजिक संगठन तथा प्रौद्योगिकीय नवोन्मेष नगरीय स्थल में इस तरह से घटित होते हैं कि जनसंख्या और पर्यावरण के बीच संतुलन बदल जाता है। इससे उत्पन्न सामाजिक प्रक्रिया के कारण नगरीय स्थान में विभिन्न प्रकार की संरचनाएं प्रकट होती हैं (शुल्ट्ज, 1979: 15)। स्टैनली के. शुल्ट्ज का मानना है कि नगरीय प्रक्रिया की बारीकियों को समझने के लिए जनसंख्या के घनत्व का आकार, ग्रामीण-नगरीय ग्रामीण प्रवसन पैटर्न, प्रजनन-मृत्यु दर अनुपात, साक्षरता-दर इत्यादि और बसावट के लिए चयनित भौगोलिक स्थिति के प्रकार जैसे पहलुओं के विश्लेषण को समझना चाहिए। इस सब के साथ ही साथ भौगोलिक स्थिति के अंतर्गत भौतिक अंतराल तथा समुदायों की दूरी की जांच-पड़ताल भी नगरीय परिदृश्य की उस तस्वीर को देखने के लिए करनी चाहिए जिसमें नगर निवासी परस्पर आदन-प्रदान करते हैं। नगरीय स्थलों में प्रौद्योगिकी की मध्यस्थता की प्रकृति को समझने के क्रम में संचार माध्यमों, परिवहन के साधनों तथा सूचनात्मक नेटवर्क का विश्लेषण करना चाहिए। सामाजिक संगठन की प्रकृति को बेहतर ढ़ंग से केवल तभी समझा जा सकता है जब गैर-कृषिगत उद्यमों में शामिल जनशक्ति की प्रतिशतता, व्यवसाय संबंधी संरचना की विविधता, रोजगार के लिए भर्ती की पद्धति तथा आर्थिक विनिमय की प्रकृति और साधनों का विश्लेषण आदि के अतिरिक्त नगरीय समुदायों के अंदर हैसियत की प्रकृति तथा सत्ता समूहों की जाँच की जाए (शुल्ट्ज, 1979: 14-16)।

3.3 मध्यकालीन भारतीय नगरों संबंधी दृष्टिकोण

मोहम्मद हबीब ने मध्यकालीन भारतीय नगरों के बारे में जीवन्त अकादमिक वाद-विवाद का शुभारम्भ किया । उनका विचार था कि मोहम्मद गौरी की विजय के पश्चात् उत्तर भारत में श्रम प्रक्रिया में अचानक वृद्धि हुई, फलस्वरूप 'नगरीय क्रांति' का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने इस श्रम प्रक्रिया के आरम्भ का कारण बाह्य कारक अर्थात मोहम्मद गौरी की विजय को बताया। उनका कहना था कि निम्न जाति के भारतीय कर्मकार, जो उस समय तक नगरों की दीवारों के बाहर तथा परिधि पर रहते थे उन्होंने मोहम्मद गौरी की सेना के साथ नगरों में प्रवेश किया और लड़ाकू सैनिक के रूप में और निर्मित उत्पादों के उत्पादन के लिए औद्योगिक क्षेत्र में अपनी सेवाएं सरकार को दीं। नई राजव्यवस्था ने नगर-श्रमिकों के प्रति सभी प्रकार के भेद-भावों को समाप्त कर दिया, जिन्होंने 500 वर्षों से भी अधिक इसे सतत् बनाए रखने में योगदान किया। इस्लाम ने नगर-श्रमिकों जैसे महावतों, कसाइयों, बुनकरों इत्यादि को आकर्षित करने तथा उनके धर्मान्तरण के लिए चुम्बक की तरह काम किया क्योंकि इसने उन्हें एक प्रकार से उर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता प्रदान की। राजपूतों के समय में जब सैन्य वर्ग वंशानुगत था और भू-सम्पत्ति के साथ जुड़ा हुआ था से भिन्न नई राजव्यवस्था ने नगरों के श्रमिक वर्ग से लड़ाकू योद्धाओं को भर्ती किया। सत्ता के तुर्की हिस्सेदारों ने अपनी सेना के सैनिक, *कारखानों* के लिए कर्मकार, शिल्पकार, निजी सेवक, संगीतकार, नर्तकियां इत्यादि नगरों में बड़ी संख्या में उपलब्ध श्रम शक्ति में से प्राप्त किए। मोहम्मद हबीब इस प्रकार मोहम्मद गौरी के द्वारा भारत विजय को भारतीय नगरीय श्रम की क्रांति के रूप में देखते हैं जिसका नेतृत्व गौरी तुर्कों ने किया (हबीब, 1952 : 55-78)।

मध्यकालीन भारत में नगरीय केंद्रों के अभ्युदय की प्रकृति का अध्ययन करने के लिए मोहम्मद हबीब द्वारा जिस प्रकार की श्रम प्रक्रिया की व्याख्या की गई है उसकी इरफान हबीब ने आलोचना की है। यद्यपि इरफान हबीब तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों के दौरान नगरों की संख्या और आकार में वृद्धि, शिल्प उत्पादन और वाणिज्य में वृद्धि के साथ नगरीय अर्थव्यवस्था के विस्तार को स्वीकारते हैं। उनका तर्क है कि ऐसा मुख्यतः कागज, वस्त्र और भवन बनाने के लिए प्रौद्योगिकी में आए परिवर्तनों या नवोन्मेषणों; व्यापार को बढ़ावा देने के लिए सिक्कों की ढ़लाई हेतु सोने और चाँदी का प्रवाह तथा एक नए शासक वर्ग की रचना, जिसने नई भू-राजस्व प्रणाली के माध्यम से ग्रामीण अधिशेष के बड़े हिस्से को हस्तगत किया तथा इसे नगरों, जहाँ वे रहते थे, में व्यय करने का परिणाम था। तथापि, वह दलील देते हैं कि ये परिवर्तन समाज के किसी वर्ग के 'विमुक्तीकरण' के कारण नहीं हुआ था। उनका मानना है कि इस अवधि के भारतीय नगरों में दास श्रमिक या परतंत्र श्रमिक, उत्पादन के लगभग सभी क्षेत्रों में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण थे (हबीब, 1978 : 289-98)।

बी.डी. चट्टोपाध्याय और आर. चम्पकलक्ष्मी ने मध्यकालीन भारतीय नगरों का उद्भव नौवीं सदी के बाद के काल को माना है। बी.डी. चट्टोपाध्याय ने उत्तर-पश्चिमी भारत पर ध्यान केंद्रित करते हुए सिंधु-गंगा दोआब, ऊपरी गंगा बेसिन और मालवा क्षेत्र में नगरों के अभ्युदय पर प्रकाश डाला है। उनका मानना है कि इसका प्रमुख कारण व्यापार से उत्सर्जित शक्तियां थीं। उन्होंने इन भौगोलिक क्षेत्रों के आर्थिक केन्द्रीय बिन्दुओं का परीक्षण कर यह दर्शाया है कि गुर्जर-प्रतिहारों के काल से पूर्व भी नगरीय केंद्र के रूप में उनका अभ्युदय हो चुका था तथा वे स्थानीय व्यापार के धुरी बिंदु थे। वह ग्यारहवीं सदी के दौरान गुजरात में 20, राजस्थान में 131, कर्नाटक में 78 और 1000 तथा 1336 की अवधि के दौरान आंध्र में 70 नगरों के उदय का अनुमान लगाते हैं (चट्टोपाध्याय, 1997 : 132-181) यद्यपि इनमें से अनेक नगरों का उद्गम व्यापार के कारण हुआ था, उनमें से बहुत से क्षेत्रीय शासकों के सत्ता के केन्द्र थे।

इसके विपरीत आर. चम्पकलक्ष्मी, जिन्होंने दक्षिण भारत पर ध्यान केंद्रित किया है, उनका मानना है कि नौवीं तथा तेरहवीं सदियों के बीच की अवधि में विदेशी व्यापार से प्रेरित होकर चोल राज्य क्षेत्र में विभिन्न आकारों और प्रकृति के अनेक नगरों का विकास हुआ। अपने सूक्ष्म विश्लेषण से वह दर्शाती हैं कि सभी मध्यकालीन दक्षिण भारतीय नगर एक जैसे नहीं थे; इसके विपरीत वह चोलों के व्यापारिक नगरों, शाही नगरों, आनुष्ठानिक-सह-धार्मिक नगरों और विजयनगर राज्य के सैन्यीकृत तथा किलेबंद नगरों के मध्य दिखने वाले स्पष्ट अंतरों की बात करती हैं। चोल साम्राज्य, जिसका आंध्र से लेकर दक्षिणी कर्नाटक तक विस्तार था, में दसवीं सदी में लंबी दूरी के व्यापार के पुनरूद्धार तथा अंततः विभिन्न श्रेणियों के द्वारा वाणिज्य के संगठन के कारण अनेक नगरों की उत्पत्ति विशेषरूप से समुद्रतटीय क्षेत्र में हुई। साथ ही साथ, नौवीं सदी में *ब्रह्मदेयों* और मंदिरों से अधिशेष के अभिसरण और मंदिरों में राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति के अधिकाधिक केंद्रित होने के कारण भी अनेक नगरीय केंद्रों का विकास हुआ। तंजौर जैसे राजकीय नगरों, जहाँ सम्भ्रान्तों और शक्ति समूहों ने मंदिर के 'आनुष्ठानिक केंद्र' के चतुर्दिक केंन्द्रीय स्थल को अपने नियंत्रण में ले रखा था जबकि शिल्पकार और सेवा समूह बाहरी परिधि में रहते थे। ये मंदिर इन राजसी नगरों के आर्थिक कार्यकलापों की प्रमुख संग्रहण संस्था बन गए। *वीरदलम* और *सुरदलम* जैसी नवीन नगरीय प्रक्रियाओं का विकास तेरहवीं सदी में सैन्य रूप से संरक्षित नगरों के रूप में हुआ। यह इस काल में व्यापारिक निकायों द्वारा हासिल सत्ता के नियंत्रण का सूचक था। वह किलेबंद नगरीय केंद्रों का भी उल्लेख करती हैं जिसे सैन्यीकृत विजयनगर राज्य के *नायकों*

ने चौदहवीं सदी से पवित्र परिसर से भिन्न नगरों के रूप में अपने नियंत्रण क्षेत्रों के रूप में स्थापित किया (चम्पकलक्ष्मी, 1996 : 25-72)।

मध्यकालीन भारत की सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं की जाँच करने वाले अनेक इतिहासकारों के लिए नगर और गांव के बीच के अन्तरसंबंधों का अध्ययन विश्लेषण का एक साधन रहा है। उत्तर भारत में मध्यकालीन भारतीय नगरों की रचना कैसे हुई यह के.एम. अशरफ, एच. के. नकवी और डब्ल्यू.एच. मोरलैंड (अशरफ, 1970; मोरलैंड, 1962; मोरलैंड, 1979; नकवी, 1968; नकवी, 1972) जैसे विद्वानों के लिए विश्लेषण का केंद्र रहा है। उनका अध्ययन मुख्य रूप से उत्तर भारत के प्रमुख नगरों की मुख्य विशेषताओं तथा आर्थिक प्रगति के साथ उनके संबंधों की जाँच के इर्द-गिर्द घूमता है। मध्यकालीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में नगरों के उदय पर बड़ी संख्या में कार्यरत विद्वानों जैसे एस.सी. मिश्रा, शीरीन मूसवी, आर. ई. फ्राइकनबर्ग, स्टीफेन ब्लेक, शमा मित्र चिनॉय, सतीश चंद्र, के. एस. मैथ्यू, अनिरूद्ध रे, सिन्नप्पाह अरासारत्नम्, के. के. त्रिवेदी, आई. पी. गुप्ता, जे. एस. ग्रेवाल और इन्दु बंगा के अकादमिक प्रयासों ने भारत में ऐतिहासिक अध्ययन की पृथक शाखा के रूप में नगरीय इतिहास के प्रादुर्भाव में सहायता की (मूसवी, 2008, 1987, मिश्रा, 1985, 1964; चिनॉय, 1998; फ्राइकनबर्ग, 1993; ब्लेक, 1993; चन्द्र, 1997, हसन, 2008; ठाकुर, 1994; गुप्ता, 1986; मैथ्यु और अहमद, 1990; त्रिवेदी, 1998; ग्रेवाल और बंगा, 1985; बंगा, 1992, 1991; अरासारत्नम् और रे, 1994; सिंह, 1985)।

शीरीन मूसवी उत्तर भारत के प्रमुख शिल्प उत्पादक नगरों, जिन्होंने उस समय सघन श्रम प्रक्रियाएं अनुभव कीं, पर अधिक ध्यान केंद्रित करती हैं (मूसवी, 1987: 300-320)। अपने हाल के अध्ययन में उन्होंने मुगल भारत में नगरीकरण के विस्तार की जाँच करने के लिए विभिन्न *सूबों* और नगरों से नगरीय कर-आय से संबंधित आँकड़ों का प्रयोग किया है। उनका तर्क है कि गुजरात *सूबा,* जिसकी लंबी-दूरी के व्यापार तथा शिल्प उत्पादन में विस्तृत भागीदारी थी, का सर्वाधिक नगरीय कराधान (*जमा* का 18.654%) था और यह साम्राज्य में सबसे अधिक नगरीकृत क्षेत्र था, इसके बाद आगरा *सूबा* का स्थान था जहाँ नगरीय कराधान *जमा* का 15.712% था। *आइने अकबरी* के आधार पर उन्होंने नगरीय जनसंख्या के रख-रखाव पर खर्च की जा रही धनराशि तथा गांवों में जीवन निर्वाह हेतु बच गई धनराशि का अनुमान लगाया है। वह कहती हैं कि मुगल भारत में लगभग 17.42% जनसंख्या नगरीय केंद्रों में रहती थी जबकि 82.58% जनसंख्या गांवों में रहती थी (मूसवी, 2008: 119-134)। स्टीफेन ब्लेक एक 'सम्प्रभु नगर' के रूप में शाहजहाँनाबाद का अध्ययन करता है और कहता है कि यह व्यक्तिगत तथा पारिवारिक प्रकृति का नगर था और इसकी दिशा पितृसत्तात्मक-नौकरशाह बादशाहों की इच्छाओं से निर्धारित होती थी। उसके लिए सम्प्रभु नगर लघु स्तर पर स्वयं बादशाह का विस्तारित पितृसत्तात्मक परिवार था। किंतु वृहत् परिप्रेक्ष्य से यह लघु साम्राज्य था। यह (शाहजहांनाबाद) पितृसत्तात्मक-नौकरशाही साम्राज्य की राजधानी थी जिसकी राज्य निर्माण प्रक्रिया में बादशाह नौकरशाही व्यवस्था के माध्यम से राज्य-क्षेत्र के ऊपर व्यक्तिगत पितृसत्तात्मक नियंत्रण का विस्तार किया करता था। यहाँ अत्यन्त ही सूक्ष्म सैन्य, राजनीतिक और आर्थिक तंत्रों तथा व्यवस्थाओं के माध्यम से नौकरशाही को बादशाह के प्रति स्वामिभक्त बनाया जाता था। 'सम्प्रभु नगर' एक स्थान के रूप में राजनीतिक प्राधिकार की नगरीय अभिव्यक्ति था और नगर में महल बादशाह की उपस्थिति द्वारा निर्मित तथा वैध ठहराई गई ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का प्रतीक था (स्टीफेन ब्लेक, *शाहजहाँनाबादः सॉवरेन सिटी इन मुगल इंडिया, 1639-1739*, दिल्ली, 1993)। सतीशचंद्र मध्यकालीन भारत में अभिजात्य वर्ग को मूलरूप से नगरीय संस्कृति से जोड़ते हैं। यद्यपि यूरोप से भिन्न भारत में अभिजात्य वर्ग की कोई वैध श्रेणी नहीं थी, लेकिन उच्चतर स्तर पर सरकार के कार्यों में

अभिजात्य वर्ग के लोगों के शामिल होने से कतिपय स्तर पर संस्कृति तथा नागरिकता प्रतिबिम्बित हुई (सतीशचंद्र, *मिडिवल इंडियाः फ्रॉम सुल्तनत टू दि मुगल्स, मुगल अम्पायर, 1525-1748*, भाग-II, नई दिल्ली, 1999, पृ. 379)। वह अठारहवीं सदी के भारत में अशांत नगरों की संघर्षपूर्ण दशाओं का भी हवाला देते हैं जिसमें अग्रणी अमीर या दरबारी वर्ग भाषा, संस्कृति, संरक्षण और क्षेत्रीय मूल के आधार पर निर्मित घटकों द्वारा प्रेरित थे (सतीशचंद्र, *पार्टीज एंड पॉलिटिक्स ऐट दि मुगल कोर्ट, 1773-1740*, नई दिल्ली, 2002: 280-300)।

इंदु बंगा की विभिन्न संपादित कृतियों ने भारत में नगरवाद के सूक्ष्म अर्थों की जाँच के लिए नगरीय इतिहासकारों को एक जगह इकट्ठा किया। उनकी संपादित कृति *पोर्ट्स एंड देयर हिंटरलैंड्स इन इंडिया* ने विद्वानों के सम्मुख विभिन्न (अवधारणात्मक और पद्धतिमूलक) मुद्दों को पत्तन नगरों के नगरीकरण की प्रक्रिया के अध्ययन हेतु विचार के लिए रखा (इंदु बंगा, *पोर्टस एंड देयर हिंटरलैंड्स इन इंडिया, 1700-1950*, दिल्ली, 1992)। के. एस. मैथ्यू और अफज़ल अहमद 'मूल कोचीन' से भिन्न अपनी नगरपालिका प्रणाली से प्रशासित हो रहे एक पृथक् नगरीय एन्क्लेव के रूप में 1527 में पुर्तगाली नगर कोचीन के अभ्युदय को देखते हैं। इसका नगरीय स्पंदन विभिन्न यूरोपीय बाजारों के साथ इसके मसाले के व्यापार से प्राप्त विपुल सम्पदा पर आधारित था (मैथ्यू और अहमद, 1990)। सिन्नाप्पाह अरासारत्नम और अनिरूद्ध रे मसूलीपट्टनम और कैम्बे के नगरीय केंद्रों के विकास में देशज बैंकिंग, शिल्पों के उत्पादन तथा व्यापार की भूमिका को दर्शाते हैं। यद्यपि दोनों नगर प्रमुख परा-महाद्वीपीय व्यापार नेटवर्क के प्रमुख केंद्र थे, अंततोगत्वा आंतरिक भू-भाग की राजनीतिक अस्थिरता तथा यूरोपीय समुद्री-यात्रा की चुनौतियों के कारण वे बुरी तरह प्रभावित हुए। विभिन्न व्यापारिक समुदाय, जो बाहरी दबावों से अत्यधिक प्रभावित होने लगे, अंततोगत्वा सतत् रूप से परिवर्तनशील दशाओं की पृष्ठभूमि में साधनों के अभाव में स्थिर रूप से अपना व्यापार नहीं चला सके और वे पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी व्यापारिक सम्पदा तथा परम्पराओं को निर्बाध रूप से आगे नहीं बढ़ा सके (अरासारत्नम और रे, 1994)।

अब नगरीय इतिहासकारों में नगरों का विवरणात्मक श्रेणियों के रूप में अध्ययन करने की परम्परा से हटकर मध्यकालीन नगरों से संबद्ध मूल्यों की जाँच करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। हर व्यक्ति जानता है कि यह जितना सरल प्रतीत होता है उतना है नहीं। मध्यकालीन नगरों के प्रादुर्भाव तथा संपोषण के लिए कारणात्मक कारक समय-समय पर भिन्न-भिन्न रहे हैं जिन्होंने उनकी कार्यात्मक भूमिकाओं में परिवर्तनों को प्रभावित किया है। कई परिस्थितियों में जब आगरा जैसे नगरों का प्रादुर्भाव मुख्यतः राजनीतिक कारणों से हुआ और वहाँ समय बीतने के साथ प्रचुर आर्थिक गतिविधियाँ संचित हो गईं। परिणामस्वरूप बाद में भी मुगलों की सत्ता के दिल्ली या अन्यत्र चले जाने के पश्चात् भी यह उत्तर भारत के प्रमुख फलते-फूलते वाणिज्यिक केंद्रों में से एक के रूप में बना रहा। बनारस जैसा कतिपय नगर जो हालाँकि मुख्य रूप से धार्मिक और तीर्थ कारणों से विकसित हुआ बैंकिंग और व्यापारिक कार्यकलापों का प्रमुख केंद्र बन गया जिसने नगर की आर्थिक विषयवस्तु को ही आमूल रूप से बदल दिया। गोवा जैसे नगर, जो प्रारम्भ में व्यापार की प्रेरक शक्ति के कारण अस्तित्व में आए, ने अंततोगत्वा पुर्तगाली राज्य के अतिशय हस्तक्षेप तथा नियंत्रण के कारण अपनी प्रमुख व्यापारिक प्रकृति को खो दिया। परिणामस्वरूप विभिन्न व्यापारिक समूह भाग कर हिंद महासागार में वाणिज्यिक दृष्टि से अपेक्षाकृत क्रियाशील तथा अधिक स्वतंत्रा प्राप्त स्थानों पर चले गए जिससे गोवा पुर्तगाली सत्ता का शुष्क आसन मात्र बनकर रह गया जहाँ न तो कोई महत्वपूर्ण व्यापार होता था न ही सत्ता का वास्तविक स्तर था। मध्यकालीन भारत के अधिकतर नगर आमूल-चूल परिवर्तन की इस प्रक्रिया से होकर गुजरे जिसके परिणामस्वरूप नगरों, जिनका प्रारम्भ में उदय कतिपय निश्चित प्रकार के कारणों से हुआ था, को समय

बीतने के साथ नए कार्य और नई भूमिकाएं मिल गईं। यह परिवर्तन नगरीय स्थानों में नए सत्ता समूहों और हैसियत समूहों के अभ्युदय के कारण हुआ। यह वर्ग नगरों के भौतिक स्वरूप में अपनी भूमिका तथा हैसियत के अभिप्राय को अभिव्यक्त करने की व्यग्रता में इतना अधिक था कि उसने पुराने सत्ता समूहों तथा उनके सभी कार्य तथा निवास स्थान कार्यात्मक रूप से पृष्ठभूमि में ढकेल दिए जो इन समूहों की सत्ता का पता लगाने के लिए, अनिवार्य शर्त के रूप में, समय के साथ सुविधाजनक रूप से विकसित हुए थे। समय के अलग-अलग बिन्दुओं पर नगरीय कृत्यों की अतिव्याप्ति और विभिन्न सत्ता समूहों के द्वारा विरोधी दावे स्थानिक प्रक्रियाओं में प्रतिबिम्बित होते रहते हैं तथा नगर स्थान में अभिलिखित मूल्यों तथा तर्क के विभिन्न स्तरों के कालानुक्रम का पता नगरीय भौगोलिक स्तरों के रहस्योद्घाटन से ही चल पायेगा (मालेकन्डाथिल, 2009: 13-38)।

3.4 मध्यकालीन नगरवाद की धारणा

अब हम मध्यकालीन नगरवाद, जो राजनीति, व्यापार और समाज से अत्यधिक निर्देशित था, की प्रकृति पर विचार करेंगे।

3.4.1 वाणिज्यिक और राजनीतिक रूप से अभिप्रेरित नगरवाद

मूलरूप से मध्यकाल और पूर्व आधुनिक काल में भारत में दो प्रकार के नगरवाद का आविर्भाव हुआ। एक ओर 'वाणिज्यिक रूप से आवेशित नगरवाद' था जो शिल्पकारों द्वारा निर्मित वस्तुओं तथा व्यापारिक उत्पादक-सह-विनिमय केंद्रों द्वारा उत्सर्जित आर्थिक शक्तियों के कारण इन स्थानों पर अस्तित्व में आया और दूसरी ओर राजनीतिक दृष्टि से आवेशित नगरवाद' था जहाँ नगरीकरण के लिए अपेक्षित शक्तियों का उत्सर्जन वास्तविक सत्ता आधारित गतिविधियों से हुआ। राजनीतिक रूप से आवेशित नगरीय केंद्रों में दिल्ली सबसे प्रमुख था जबकि दौलताबाद, गुलबर्गा, गौड़, आगरा, लाहौर, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि अन्य महत्वपूर्ण 'राजनीतिक नगरों' के रूप में उभरे (अशरफ, 1970: 100-210)। वाणिज्यिक रूप से आवेशित नगरीय केंद्रों का विकास देश की विभिन्न दिशाओं की ओर जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्गों के संधि-बिन्दुओं पर हुआ। जौनपुर, बुरहानपुर, मुल्तान, पटना, अहमदाबाद, उज्जैन, अजमेर और इलाहाबाद मुख्य रूप से वाणिज्यिक दृष्टि से आवेशित नगरों के रूप में विकसित हुए (मोरलैंड, 1962: 145-172; नकवी, 1968: 12-130)। हालांकि बाद में इन नगरीय केंद्रों में प्रान्तीय राजधानियों की स्थापना के साथ उनकी नगरीय प्रकृति में एक अलग मोड़ आ गया। चूँकि इस अवधि के दौरान वाणिज्य तथा राजनीति परस्पर गुंथे हुए थे बहुधा नगरों की ये दो भिन्न श्रेणियां पृथक आवृत्त इकाइयों में मौजूद नहीं थी अपितु भू-आर्थिक इकाइयों के रूप में दोनों की ही विशेषताएं अभिन्न रूप से मौजूद थीं। इन क्षेत्रों में अनेक मिलन बिंदु थे। वस्तुत, 10वीं और 11वीं सदियों में व्यापार के पुनरूद्धार ने भारत के विभिन्न भागों में नगरीय प्रसार की प्रक्रिया को प्रेरित किया; तथापि ईरानी साम्राज्य की नगरीय संस्कृति की परम्परा के तत्वों के साथ इस्लाम के प्रवेश ने इस प्रक्रिया को और तेज कर दिया जिसके कारण आर्थिक और सांस्कृतिक विनिमयों के केंद्रों के रूप में अनेक नगरों तथा अर्धनगरों का उदय हुआ।

विचारधारा के रूप में इस्लाम ने कतिपय प्रथाओं को जन्म दिया जिसने उनकी धार्मिक आस्था संबंधी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए कतिपय विशिष्ट प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग को तीव्रता प्रदान की। इस्लामी तौर-तरीकों के अनुसार पुरूष और महिला दोनों ही के द्वारा अपना पूरा शरीर वस्त्र से ढंकने की आवश्यकता ने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों तथा परिधानों की मांग में अचानक प्रचुर मात्रा में वृद्धि की जिसने अभूतपूर्व रूप से वस्त्र उत्पादन

कार्यकलापों को बहुत तेज कर दिया। यहाँ यह उल्लेख करना रोचक होगा कि उस समय इस्लाम तथा मुसलमान बुनकरों के साथ वस्त्र उत्पादन का जो अंतर्भूत संबंध था के कारण भारत के विभिन्न भागों में गैर मुस्लिम बुनकरों द्वारा भी कई मुस्लिम उत्सवों, जैसे मुहर्रम, जिसे आंध्रप्रदेश में बिल्कुल ही भिन्न नाम से कुछ हिन्दु बुनकरों द्वारा मनाया जाता है, को मनाना आरंभ कर दिया। इस प्रक्रिया ने लंबे अंतराल में कपड़ा उत्पादन के कार्यकलापों में सम्मिलित लोगों के विभिन्न समूहों को विकास कर रहे इस्लामी एन्क्लेव की ओर एक चुम्बक की तरह आकृष्ट किया जो शीघ्र ही शिल्पकारों तथा व्यापारियों के लिए अभिसरण बिंदु बन गया। मुल्तान, अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत इत्यादि जैसे अधिकतर नए उभरते हुए नगरों में बुनकर समूह प्रभुत्वशाली था जिसे विभिन्न प्रकार के वस्त्र उत्पादन में विशेषज्ञता हासिल थी (मोरलैंड, 1962: 160-172)। *इक्तेदारी* प्रणाली से उत्सर्जित आर्थिक शक्तियों ने उपभोक्ताओं का एक बड़ा वर्ग उत्पन्न किया जिसके पास प्रचुर क्रय क्षमता थी। इसने नगरीय प्रसार की प्रक्रिया को अत्यधिक तेज कर दिया। *इक्तेदारों* ने कृषि अधिशेष को अपने आवासीय क्षेत्रों में खींचकर अनेक एन्क्लेवों में नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की।

3.4.2 नगरवाद और सूफी तथा भक्ति का प्रसार

अनेक छोटे नगरों और नगरों में बुनकरों तथा शिल्पकारों की विभिन्न श्रेणियों को ग्रामीण समाज द्वारा प्रदत्त 'निकृष्ट तथा तिरस्कृत हैसियत' के कारण स्वयं को उस समाज से अलग कर इन नगरों के उदीयमान मध्य वर्ग में स्वयं को सामाजिक रूप से स्वीकार्य तथा ग्राह्य बनाने के लिए यह वर्ग सूफी तथा भक्ति परम्परा से स्वयं को जोड़ता गया। सूफी और भक्ति आंदोलन में दोनों का ही भारत के अनेक हिस्सों में नगरवाद की सांस्कृतिक शक्ति के रूप में विकास हुआ और अपने बहु मंचों, आनुष्ठानिक प्रथाओं तथा विचारधाराओं के माध्यम से उन्होंने बिखरी हुए शिल्पकारों की श्रेणियों के कतिपय समूह को आपस में जोड़ा, उन्हें एक नया संदर्भ और नई प्रकार की पहचान प्रदान की जिसने उनके आत्म गौरव को बढ़ाया। यह उस समय के संतों द्वारा प्रयुक्त रूपकों और उपमाओं में दृष्टिगोचर होता है। कबीर ने अपने पदों में कपड़ा बुनाई से संबंधित रूपकों और उपमाओं का अधिकाधिक प्रयोग किया (सिंह, 1993: 48)। लेकिन सूफी और भक्ति आंदोलनों ने विभिन्न शिल्पकार समूहों में अपनी विचारधारा को स्वीकार्य बनाने के प्रयास में श्रम की संस्कृति को वैध बताया, परिणामस्वरूप जिसने द्वितीयक क्षेत्र में उत्पादन और नगरीय संरचना की प्रक्रिया को भी उत्प्रेरित किया। इसका निश्चित परिणाम यह हुआ कि गांव की सीमा के अंदर श्रमिकों को नियंत्रित करने की ग्रामीण अभिजातों तथा कुलीनों की शक्ति में कमी होती गई और इसके बाद नए विकसित होते नगरीय क्षेत्रों में श्रम बल का अत्यधिक प्रवाह हुआ जहां उन्हें कार्य मिलने के अवसर प्राप्त थे। मकसूद अहमद खान नगरीकरण पर सूफीवाद के प्रभाव के बारे में एक भिन्न परिप्रेक्ष्य देते हैं। उनके अनुसार सूफी संत जो अपने पीर-पैगम्बरों के मतों का प्रचार करने के लिए दूरस्थ स्थानों और आंतरिक भू-प्रदेशों में गए वे उन स्थानों में नगरीकरण की प्रक्रिया के साधक बने। समय बीतने के साथ इन दूरस्थ स्थानों ने सूफी संतों के साथ अपनी संबद्धता के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और लोकप्रिय हो गए, जिसके कारण उनके इर्द-गिर्द अनेक तीर्थयात्री तथा भक्तजन आने लगे और वे नगरीय केंद्रों के रूप में विकसित होते गए। इस प्रक्रिया में सिलहट (ढाका के समीप) जैसा स्थान, जिसका उद्‌गम और विकास सूफी पीर शाह जलालुद्दीन से संबंधित है, नगरीय केंद्र बन गया (खान, 2004: 103-5)।

पन्द्रहवी और सोलहवीं सदियों तक कबीरपंथियों और दादू पंथियों समेत सूफी और भक्ति आंदोलन नगरों के धार्मिक आंदोलनों के रूप में क्रमिक रूप से विकसित होते गए, और इन्होंने, मुख्य रूप से, नगर निवासियों के आध्यात्मिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक ऐसे मुद्दों,

जिनका कि मुख्यधारा के रूढ़िवादी धार्मिक वर्गों ने समाधान नहीं किया, को साधा।[1] इरफान हबीब (1969 : 6-13) भी उत्तर भारत में अलग परिप्रेक्ष्य से भक्ति आंदोलनों में शिल्पकारों की भागीदारी के मुद्दों पर चर्चा करते हैं। (सतीशचंद्र की धारणाओं के कुछ पहलुओं को पहले प्रस्तुत किया गया है। इसलिए हम इस बिंदु को यहाँ छोड़कर आगे बढ़ते हैं)। कुछ पंथों जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है, के अनुयायियों की संख्या आज के परिप्रेक्ष्य में मामूली प्रतीत हो सकती है, किंतु भक्ति तथा सूफी आंदोलनों ने उत्तर भारत के शिल्पकार समूहों को जिस प्रकार लामबंद किया और विकास कर रहे नगरों के निवासियों के सामाजिक तथा आर्थिक संघटनों पर जो दीर्घकालिक प्रभाव डाला उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। ग्रामीण समुदायों, जो संगठनात्मक रूप से स्थिर थे, के विपरीत विकास कर रहे नगर एक तरह के अराजक स्थान थे जहां समृद्ध व्यापारियों तथा निर्धन निवासियों के बीच काफी दूरी थी, जहाँ अति रोजगार और अल्प रोजगार की समस्याएं थी जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न शिल्पकारों ने समाज के कुछ ही लोगों के हाथ में अत्यधिक सम्पदा के संचय की पृष्ठभूमि के अर्थ को समझने के लिए नए धार्मिक आंदोलनों को अपनाया। भ्रमणशील बुनकर और शिल्पकार, अपने साथ इन नए धार्मिक मूल्यों को एक नगर से दूसरे नगर में ले गए इस प्रकार यह लोग भी नई उद्‌भव होती नगरीय संस्कृति के वाहक बने।[2] यह जौनपुर, ग्वालियर, मांडु, बुरहानपुर, वाराणसी, लुधियाना, पानीपत, अहमदाबाद इत्यादि में पर्याप्त अंश में देखा जा सकता है जो इस समय तक महत्वपूर्ण गौण नगरों के रूप में विकसित हो चुके थे। यह नगर माल के आवागमन अथवा धार्मिक मत-संबंधी यात्राओं द्वारा निवासियों तथा संस्थाओं से अत्यंत ही सक्षम रूप में एक नेटवर्क द्वारा जुड़े थे (ग्रेवाल, 2006: 325-6; इराकी, 2009: 56-74; रिजवी, 1978; लॉरेन्ज़न, 1987: 287-303; लॉरेन्ज़न, 1981)। कबीर, जिनका मुख्य पेशा बुनाई था, ने बुनकरों के नगर बनारस में काफी समय व्यतीत किया। उन्होंने अपनी काव्यात्मक भाषाशैली के माध्यम से नगर-निवासियों के आध्यात्मिक तथा सामाजिक मुद्दों को उठाया। दादू, जिनका जन्म 1544 में अहमदाबाद में धुनिया परिवार में हुआ था, ने अपनी गतिविधियों का मुख्य केंद्र कल्याणपुर, केवलपुर इत्यादि जैसे छोटे नगरों को बनाया था (कालेवर्त, 1988: 33-6; 67-72)।

3.4.3 पोलिसक्रेसी

सोलहवीं सदी से आंतरिक भू-भागों से संसाधनों को जुटाने तथा दूर-दराज के क्षेत्रों को सत्ता के प्रमुख केंद्र से जोड़ने दोनों ही के लिए नगरों की श्रृंखला की स्थापना की रणनीति को मुगलों तथा पुर्तगालियों द्वारा राजनीतिक प्रक्रियाओं के अनिवार्य अवयव के रूप में लागू किया गया। मुगलों और पुर्तगालियों की साम्राज्यवादी नींव में काफी हद तक नगरों की

---

1. यहाँ फ्रांसिस्कन फ्राइअर्स (दि मेंन्डिकैन्ट्स), दि डोमिनिकन फ्राइअर्स (दि प्रेडिकैन्ट्स), अलेलुइएन्ट्स, फ्लैगेलैन्ट्स, वाल्डेनसियन्स, पैटेराइन्स, आर्नोल्डिस्ट्स, पुअर लोम्बार्ड्स, जोआकिमाइट्स, डलसिनियन्स, अल्बीजेन्सियन्स और *ह्यूमिलियाटिस* के धार्मिक आंदोलनों में हम विलक्षण समानता देख सकते हैं, जिनका मध्यकालीन यूरोपीय नगरों के विकास के साथ धार्मिक आंदोलनों के रूप में प्रसार हुआ, जिन्होंने नगर निवासियों के विभिन्न मुद्दों तथा संवेदनशीलता का समाधान किया। विस्तृत विवरण के लिए डोनाल्ड एफ. लोगन, *ए हिस्ट्री ऑफ दि चर्च इन दि मिडल एजेज*, लंदन, 2002, पृ. 203-14; सी. वायोलान्टेम, "इरेसी अर्बेन ए इरेसी रूराली इन इटालिया दाल XI अल XIII सेकोलो", ओ. कैपिटानी (संपा.), मेडियओइवो इरेटिकेल, बोलोग्ना, 1977 देखिए।

2. यूरोपीय इतिहास में इसकी विलक्षण समानता देखी जा सकती है। विस्तृत विवरण के लिए देखिए आर. डब्ल्यू. साउदर्न, (1970) *वेस्टर्न सोसाइटी एंड दि चर्च इन मिडल ऐज* (मिडलसेक्सः हर्मोन्ड्सवर्थ), पृ. 273-86; डोनाल्ड एफ. लोगान, (2002) *ए हिस्ट्री ऑफ दि चर्च* (लंदनः राउटलेज), पृ. 275-93).

श्रृंखला, जिसे शासकों या उनके विभिन्न सत्ता-साझीदारों ने या उनके प्रतिनिधियों ने गांवों तक अपने प्राधिकार का विस्तार करने तथा इसके अधिशेष के दोहन करने की प्रक्रिया में अपने साम्राज्य की चारों दिशाओं में स्थापित किया था, शामिल थी। इस अर्थ में मुगलों के शासन को "पोलिसक्रेसी' कहा जा सकता है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'पॉलिस' (नगर) से हुई है जो नगरों और नगर निवासियों के माध्यम से श्रेष्ठ प्राधिकार के शासन का सूचक है, जिसने गांव को आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से अपने अधीनस्थ बनाए रखा। तथापि, यह विचार इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करता कि गांव में भी नगरीय अर्थव्यवस्थाओं के विस्तार या संकुचन के बीज निहित थे। यह सत्य है कि ग्रामीण-नगरीय नैरन्तर्य को दोनों परिप्रेक्ष्य से देखा जाना है। वास्तव में राज्य के 'पॉलिसक्रैटिक' स्वरूप की प्रक्रिया अनेक 'राजनीतिक रूप से आवेशित नगरों' के सृजन और पहले से ही मौजूद वाणिज्यिक नगरों को राजनैतिक अर्थ देने से भी हुआ।

मुगल शासकों में सर्वप्रथम अकबर द्वारा अपने उभरते हुए साम्राज्य को संवहनीय बनाने के लिए स्तम्भों के रूप में प्रमुख संसाधन-उत्पन्न करने वाले स्थानों में नगरों की श्रृंखला के निर्माण के साथ शासन का 'पोलिसक्रैटिक' स्वरूप आरम्भ किया गया। अकबर ने आगरा (जो 1565-1571; 1598-1606 के दौरान मुगलों की राजधानी बना), फतेहपुर सीकरी (1571-1585), लाहौर (1585-1598) जैसे साम्राज्यवादी राजधानी नगरों सहित अनेक नगरों की नींव रखी, और कुछ को पुनः स्थापित किया या उन पर विजय हासिल की या उनमें फेरबदल किया (हसन, 2008: 225-31)। एक नगर से दूसरे नगर में राजधानी का पश्चिम की दिशा में स्थानान्तरण उसके द्वारा पश्चिम दिशा में किए गए भौगोलिक विजय अभियान के अनुरूप था। ऐसा उसके द्वारा नए-नए विजित भू-भागों तथा संभावित विद्रोही एन्क्लेव पर संसाधन जुटाने के अतिरिक्त अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए भी किया गया। ऐसे नगरों में उसने सत्ता के अपने साझीदारों को बसा दिया। परिणामस्वरूप, एक नगर से दूसरे नगर में सत्ता के आधार के स्थानान्तरण ने राजनीतिक दृष्टि से साम्राज्य के सीमावर्ती क्षेत्रों में उसकी स्थिति को सुदृढ़ और स्थायी करना सुनिश्चित किया, तथा इससे इन नगरों के आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से आर्थिक संसाधन तथा वस्तुओं के प्रवाह तथा आर्थिक प्रक्रियाओं, जिन्हें उसने पहले ही अपने राजकोषीय और आर्थिक पहलों के माध्यम से उत्प्रेरित कर दिया था, के लिए मार्ग प्रशस्त किया। मुजफ्फरशाह को पराजित कर गुजरात की विजय (1572-3) ने अकबर को सूरत, भड़ौच तथा कैम्बे के व्यावसायिक स्पंदनशील बन्दरगाह नगरों का स्वामी बना दिया, जबकि बंगाल पर आधिपत्य (1574-6) ने बंगाल में उभरते हुए नगरों, चटगांव, सतगांव और बुट्टोर (बेटोर-हावड़ा), उसके नियंत्रण को आसान कर दिया। चटगांव और संतगांव पुर्तगाली निजी व्यापारियों और उनके भगोड़े व्यापारियों के व्यापारिक प्रतिष्ठानों की स्थापना के साथ नगरों के रूप में उभरे थे। (काम्पोस, 1979: 66-99)। पुर्तगालियों ने बुट्टोर, (बेटोर-हावड़ा) में नदी के किनारे-किनारे झोपड़ियों और बांस की संरचनाओं की श्रृंखला स्थापित की जो उनके अस्थायी आवास तथा वाणिज्यिक प्रतिष्ठान थे जिसे वे वहाँ से जाते समय उसमें आग लगाकर नष्ट कर देते थे जैसा कि 1565 में सीजर फ्रेडरिक (1969: 411, 439) वर्णित करता है। 1583 में अकबर ने स्थल मार्ग तथा गंगा और यमुना के जल मार्गों के अभिसरण बिंदु पर एक विशाल किले के साथ इलाहाबाद (पुराने प्रयाग के स्थल पर) नए नगर का निर्माण किया जो अंततोगत्वा पूर्वी गांगेय घटी से संसाधनों को जुटाने के आर्थिक साधन के रूप में विकसित हुआ (रिचर्ड्स, 1993: 27-30, 62)। मुगलों की 'पोलिसक्रैटिक' नीतियों की एक प्रमुख विशेषता फैलती हुई राजनीतिक सीमाओं के साथ और नई राजनीतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए नए नगरों का निर्माण और नए नगरों में सत्ता के आधार को बार-बार स्थानान्तरित करना था। इस प्रकार, यद्यपि जहाँगीर ने

आगरा को 1607 से 1612 तक अपनी सत्ता का आधार केंद्र बनाए रखा और बहुधा इसकी यात्रा की, साथ ही वह अजमेर, कश्मीर और लाहौर अपनी राजधानी स्थानान्तरित करता रहा (हसन, 2008: 226)। शाहजहाँ ने आगरा में अपने आरम्भिक शासन के पश्चात् अपने सत्ता के आधार को दिल्ली में नवनिर्मित शाहजहाँनाबाद नगर (1639) में स्थानान्तरित किया (ब्लेक, 1993), जबकि औरंगजेब ने अपनी राजधानी शाहजहाँनाबाद से आगरा (1669-1671) (हसन, 2008: 226) और अंततः दक्कन में उसके अपने नाम पर निर्मित औरंगाबद (1683) (मालेकन्डाथिल, 2013: 140-159) नगर में स्थानान्तरित की। यद्यपि आगरा को साम्राज्य का राजधानी नगर माना गया, सत्ता की प्रमुख संस्थाओं तथा साधनों के साथ दरबार सतत् रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होता रहा, इससे विभिन्न श्रेणियों के मध्यवर्ती कस्बों का सृजन हुआ और इसने साम्राज्य की चारों दिशाओं में नगरीकरण की प्रक्रियाओं को बड़ी मात्रा तथा स्वरूप में सक्रिय कर दिया जो राज्य के 'पोलिसक्रैटिक' स्वरूप के लिए अपेक्षित था।

इनमें से अधिकतर नगरों में शासक वर्ग लघु रहा होगा, तथापि उनकी बहुविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए के विभिन्न मध्यवर्ती स्तरों के सहवर्ती सृजन ने इन उदीयमान नगरों में उस जटिल श्रम प्रक्रिया को त्वरित कर दिया जिसने नगरीकरण की शक्तिशाली तरंगों का उत्सर्जन किया। बार-बार राजधानी स्थानान्तरण की इस प्रक्रिया में नए नगरों की स्थापना की गई तथा विद्यमान नगरों की नई आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उत्प्रेरित तथा विस्तारित किया गया; तथापि सबसे विलक्षण घटनाक्रम यह था कि इन बड़े नगरों के बीच मध्यवर्ती और द्वितीयक नगरीय केंद्रों के रूप में अनेक उपनगर और नगर बसाये गए। गांवों की सम्पदा को अधिकाधिक इन नगरों में केन्द्रित किया गया जहाँ बहुधा श्रेष्ठ साम्राज्यवादी बड़े नगरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन तथा विनिमय कार्यकलाप हुआ करते थे। एक संपूरक नगर के रूप में नगर एक आर्थिक साधन बन गया जिसकी सहायता से साम्राज्यवादी बड़े नगरों के आधार स्तम्भ ग्रामीण विशाल क्षेत्र में फैले हुए बृहत् प्रकार के माल और उत्पाद आंतरिक भू-भाग के हृदय में प्रवेश करते थे। नगरों के इन श्रेणीकृत पदानुक्रम के माध्यम से, जो समय बीतने के साथ वहाँ होने वाले श्रम सघन कार्यकलापों के अंश के आधार पर हुआ और कड़ी में मनके की भांति गुंथा हुआ रहा, गांवों से साम्राज्यवादी बृहत नगरों की ओर इस तरीके से संसाधनों का निर्बाध प्रवाह हुआ कि यह अनुक्रमिक सत्ताधारी वर्गों, उनके अनेक मध्यवर्तियों, सहयोगियों तथा अधीनस्थों की उपभोक्तावादी मांगों को पूरा करने के अतिरिक्त साम्राज्य के मंहगे ढ़ांचे का संवहन कर सका।

इस प्रकार, विभिन्न नगरों के निर्माण और बनावट का सहवर्ती सत्ता के साझीदार के रूप में *मनसबदारी* प्रणाली के अंतर्गत अभिजात्यों का लंबा पदानुक्रम था जिन्होंने उदीयमान नगरों में रहकर इनमें गांवों से अपनी *जागीरों* की सम्पदा लाना शुरू किया। सत्ता के ये साझीदार सशक्त उपभोक्ता वर्ग बन गए जिनके पास खर्च करने की अद्भुत क्षमता थी जिसने तैयार माल के उत्पादन तथा उनकी विनिमय प्रक्रियाओं दोनों में अर्थव्यवस्था को उत्प्रेरित किया। इन अभिजात्यों के लिए नगर प्रमुख आवास स्थल बन गए तथा अकबर द्वारा शुरू की गई *मनसबदारी* प्रणाली के अन्तर्गत उन्हें जो *जागीरें* मिला करती थीं उसने उन्हें खर्च करने के लिए प्रचुर सम्पदा प्रदान की। एक साधारण मुगल घुड़सवार जिसके पास तीन घोड़े होते थे के लिए 25 रू. प्रतिमाह का वेतन और उच्च 5000 *जात.* (व्यक्तिगत वेतन) के अमीर का वेतन 30,000 रू. प्रतिमाह था (चन्द्रा, 2006: 160-1), जो स्पष्टतः प्रत्येक *कस्बे/* नगर में विभिन्न क्षमता तथा सामर्थ्यपूर्ण पदानुक्रम को दर्शाता है, जो बाजार में भारी मात्रा में सम्पदा की आपूर्ति कर सकते थे, जो उपभोक्ता वर्ग की संख्यात्मक शक्ति तथा क्रय शक्ति बढ़ाने में सहायक थी, फलतः वस्त्र, रेशमी वस्त्र, रेशम के कालीन, बेलबूटेदार वस्त्र इत्यादि जैसी

विलासितापूर्ण मदों की विभिन्न किस्मों की मांग में वृद्धि हुई। अबुल फजल वर्णन करता है कि अकबर ने यह आदेश दिया था कि कतिपय हैसियत के लोग केवल कतिपय परिधान ही धारण करेंगे, स्पष्टतः वह उपभोग की आदत को सामाजिक हैसियत के साथ समानता पर लाना चाहता था (*आइन-ए अकबरी*, 1977, भाग I, *आइन* 32:94)। अभिजात्य लोगों तथा धनवान व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला बेशुमार खर्च और आडम्बरपूर्ण उपभोक्तावादी व्यवहार उनकी सामाजिक हैसियत के सूचकांक के रूप में देखे जाते थे। परिणामस्वरूप, उभरते हुए उपभोक्ता वर्ग की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकृति के उत्पादक संबंधी कार्यकलापों का नगरों तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रसार हुआ जिससे द्वितीयक उत्पादन बहुत ही तीव्र हो गया और विदेशी बाजारों की ओर उन्मुख व्यापार में तेजी आई।

नगर-उन्मुखी कार्यकलापों, जिसमें सबसे प्रमुख प्रौद्योगिकीय नवोन्मेष था और जो अकबर के समय से और तीव्र हो गया, में वृद्धि करके 'पोलिसक्रैटिक' शासन को बढ़ावा दिया गया। अकबर जो शिल्प उत्पादन तथा व्यापार की प्रक्रिया को उत्प्रेरित करने के लिए अत्यधिक उत्सुक था, ने वस्त्र के उत्पादन में नई प्रौद्योगिकियों को शुरू किया। उसने भारत में रेशम के वस्त्रों, जरीदार वस्त्र, बेलबूटेदार वस्त्र और रेशम के कालीन के काम में कारीगरों को प्रशिक्षण दिलाया जिससे भारतीय वस्तुएं ईरानी तथा यूरोप की वस्तुओं से उत्कृष्ट हो सकें (हबीब, 2005: 132)। अकबर द्वारा भारत लाए गए दक्ष उस्तादों तथा विशेषज्ञों ने वस्त्र उत्पादन में शिक्षा दी जिन्होंने कभी-कभी भारतीय पैटर्नों के साथ ईरानी, यूरोपीय तथा चीनी पैटर्नों के मिश्रण का प्रयोग भी किया। आगरा, फतेहपुर सीकरी, लाहौर और अहमदाबाद जैसे नगर प्रयोगशालाएं बन गए जहाँ ये प्रौद्योगिकीय प्रयोग बार-बार किए गए और ये नगर जल्द ही शिल्प-उत्पादन के प्रमुख केंद्र बन गए (हबीब, 2005: 132-133)। रेशमी और सूती वस्त्रों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन तथा मुगल क्षेत्र में उनका व्यापार *आइने अकबरी* से अभिप्रमाणित होता है, जिसमें सूती वस्त्रों की लम्बी सूची दी गई है, जैसे खासा (जिसकी कीमत प्रति पीस 3 रू. से 15 *मुहर* के बीच थी), *चौतार* (3 रू. से 9 *मुहर* तक), *मलमल* (4 रूपये), *तनसुख, गंगाजल* (चार रूपये से पांच *मुहर* तक) और *भैरौं* (चार रूपये से चार *मुहर* तक)। सूती वस्त्रों की अनेक किस्में जैसे *सालू मिहरकुल, सिरी साफ, सहन, झोना, अटन, असावली, बाफ्ता, महमदी, पंचतोलिया, झोला* इत्यादि भी व्यापार के लिए मुगल नगरीय बाजारों में ले जाए गए (*आइने अकबरी*, 1977, भाग I, *आइन* 32: 100-101)। उत्पादन में वृद्धि से स्थानीय मांग के अतिरिक्त, अधिशेष वस्त्र उत्पादन बंगाल और गुजरात के समुद्री पत्तनों के माध्यम से विदेशी विनिमय के लिए अधिकाधिक मात्रा में ले जाए गए। सूरत- बुरहान-आगरा मार्ग (टैवर्नियर, 1925: 40-53; मन्डी, 1914: 9-65, मॉन्सरेट, 1922: 5-27) और सूरत-अहमदाबाद-आगरा मार्ग का इन नगरों के उत्पादन केंद्रों को पत्तन नगरों तथा तटवर्ती भारत के विनिमय केंद्रों से जोड़ने के लिए बार-बार प्रयोग किया गया (टैवर्नियर, 1925: 54-72; मन्डी, 1914: 231-72)। विभिन्न उत्तर भारतीय नगरों से तैयार उत्पाद छोटी नौकाओं से नदीय मार्ग (हबीब, 1999: 70) और ग्रांट ट्रंक रोड, जिसे शेरशाह ने आरम्भ में अटक से दिल्ली तक बनवाया था (फारूक, 1977: 11) जिसका बाद में आगरा से पूर्वी बंगाल में सोनारगांव तक विस्तार किया गया (कानूनगो, 1965: 315'-6), द्वारा बंगाल के पत्तनों तक पहुँचाए गए।

3.4.4 पुर्तगाली नगरः पोलिसगार्किक

पुर्तगालियों ने भी अपनी साम्राज्यवादी इमारत को खड़ा रखने के लिए नगरों के माध्यम को अपनाया, किंतु मुगलों ने जिस तरह से उनका उपयोग किया उससे पुर्तगालियों का तरीका बिल्कुल ही भिन्न था। पुर्तगालियों ने नगरों का प्रयोग गांवों के अधिशेष को निष्कासित करने

तथा लाभ कमाने के लिए आर्थिक साधनों, की तरह किया जिसे वे अंततः यूरोप लेकर गए। मुगलों ने पुर्तगालियों के विपरीत भारत के अंदर ही सम्पदा का परिसंचरण होने दिया और नगरों को बाजार की जरूरतों तथा उनकी राजनीतिक अपेक्षाओं के प्रत्युत्तर के आधार पर विकसित होने दिया। पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तट पर क्वीलोन, कोचीन, क्रैंगान्नोर, कैन्नानोर, मैंगलोर, होनावर, बार्सेलोर, गोवा, ताना, बसीन, दमन और दीव जैसे नगरों की श्रृंखला की स्थापना की (सिल्वेरिया, 1991: 80-90; मालेकन्डाथिल, 2001: 74-5, 148-50, 177-8)। पुर्तगालियों के पास पहले से ही कुछ नियत-संरचनाएं मौजूद थीं जिनका उन्होंने अपने नगरीय एन्क्लेवों की प्रकृति तथा स्वरूप को आकृति प्रदान करने के लिए इस ढंग से सुविधापूर्वक प्रयोग किया जिससे कि आंतरिक भू-भागों से राजस्व की निकासी अधिकतम हो जाए (रोसा, 1997)। पुर्तगालियों द्वारा नगर आधारित प्रशासन के इस विशेष रूप को, जिसे भारत के पश्चिमी तट पर शुरू किया गया, को 'पोलिसगार्किक' कहा जा सकता है। यह हालांकि उसी शब्द 'पोलिस' (नगर) से उत्पन्न हुआ है, परन्तु इसका प्रयोग आंतरिक भू-भागों से अधिशेष की निकासी के प्रयोजन के लिए और देशी संसाधनों तथा कौशलों के ऊपर विभिन्न प्रकृति के नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से नगरों को माध्यम बनाकर विदेशी शक्तियों के 'शासन' को इंगित करने के लिए किया जाता है। आरम्भ में कोचीन और बाद में गोवा का विकास भारत में पुर्तगाली शासन के नियत प्रमुख केंद्रों के रूप में किया गया, जबकि तटवर्ती भारत में अन्य पुर्तगाली नियंत्रित पत्तन-नगरों की अधिशेष निकासी की व्यापक परियोजना में पूरक तथा अनुपूरक भूमिकाएं थीं (मालेकन्डाथिल, 2010: 301-328)। 1505 से कोचीन *एस्तादो दा इंडिया* (भारत में पुर्तगाली नियंत्रित क्षेत्र) की राजधानी थी, लेकिन 1530 में *एस्तादो दा इंडिया* की राजधानी कोचीन से गोवा स्थानान्तरित कर दी गई (गोडिन्हो, 1982: 34)।

पुर्तगाली भारत के पश्चिमी तट पर अवस्थित अपने विभिन्न नगरीय केंद्रों के व्यापारिक कार्यकलापों से जितनी सम्पदा संचय करते थे वह अपार थी। सन् 1610 के लगभग कोचीन के पुर्तगाली नगर में होने वाले निजी व्यापार की वार्षिक धनराशि 22,80,000 पारडाओस[3] था जबकि गोवा में इसी अवधि में यह 46,66,000 *पारडाओस* था। गोवा नगर की सीमा शुल्क चौकी से वार्षिक आय 2,10,000 *पारडाओस* थी (कुन्हा, 1995: 256: 7)। 1610 में दीव के व्यापार का वार्षिक मूल्य 54,27,900 *जेराफिन्स* और बसीन के व्यापार का वार्षिक मूल्य 31,96,800 *जेराफिन्स* था जबकि दमन का 1225440 *जेराफिन्स* तथा चौल का 6,92,640 *जेराफिन्स* था।[4] इस प्रकार इन नगरों में संचित सम्पदा का एक बड़ा हिस्सा सीमा शुल्क के रूप में (3.5% से 6% तक के बीच) पुर्तगालियों द्वारा हस्तगत किया गया और विभिन्न रूपों में यूरोप को हस्तांतरित किया गया।

गोवा, जो कि सत्ता का मुख्य केंद्र हुआ करता था, ने धर्म की सर्वसामान्यता, अपने निवासियों के लिए खाद्य संहिता, वेशभूषा संहिता और भाषा संहिता के माध्यम से सांस्कृतिक

3. यह जानकारी बी एन एल, कोड 11410, पृ. 116 वी, *ओर्कामेन्टो डे 1612 कोचीन* में उस सूचना पर आधारित है जिसमें बताया गया है कि कोचीन के राजा द्वारा 1612 में 80,000 *पारडाओस* सीमा शुल्क (जो 3.5% की दर से वसूला जाता था) के रूप में एकत्र किया गया था। इस सूचना की पुष्टि कोचीन नगर के रखरखाव के लिए प्रत्येक व्यापारी से एक प्रतिशत शुल्क लिए जाने से भी की जा सकती है। 1587 से 1598 की अवधि में वार्षिक औसत आयात 7,34,900 *पारडाओस* था। बी एन एल, फन्डो जेराल, कोडिस सं. 1980 "लिव्रो दास डिस्पोजास द हम पोर्सेन्टो," *ताबोआदा* सेक्शन, पृ. 5-16, पायस मालेकन्डाथिल, *मैरिटाइम इंडिया*, पृ. 192.

4. इसका मूल्यांकन इसी अवधि के लिए दीव (2,44,500 *जेराफिन्स*), बसीन 1,44,000 *जेराफिन्स*) दमन (55,200 *जेराफिन्स*), और चौल से (31,200 *जेराफिन्स*), संग्रहित सीमा शुल्क पर आधारित है (कुन्हा, 1995: 215)।

सजातीयता तथा मानकीकरण को लागू किए जाने से वह विशिष्टता (exclusivity) के उच्चतम स्तर तक पहुँच गया, जबकि अन्य नगरों में गोवा के सत्ता केंद्र से नगर विशेष की दूरी के आधार पर व्यापकता तथा सांस्कृतिक विजातीयता के अलग-अलग अंश थे जिसमें बहु-सांस्कृतिक निवासियों को भिन्न-भिन्न कार्यात्मक भूमिकाएं निभाने के लिए दी गई थीं। गोवा नगर में प्रत्येक निवासी को पुर्तगाली धर्म का पालन करना था तथा लूसिटेनियन सांस्कृतिक प्रथाओं को मानना था (मालेकन्डाथिल, 2009: 25-7), जबकि अन्य पुर्तगाली नगरों में गैर-पुर्तगाली निवासियों की संख्या सत्ता के केंद्र से उनकी दूरी के समानुपातिक बढ़ती गई। सामान्य दस्तूर ऐसा था कि कोई नगर गोआ के सत्ता के केंद्र से जितना दूर था, उसका नगरीय स्थान वाणिज्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उतना ही ज्यादा समावेशीय था जैसा कि दीव के पुर्तगाली नगर में था जहां केवल कुछ पुर्तगाली ही रहते थे, जबकि इसके निवासियों में बनियों की संख्या कहीं ज्यादा थी (पीयर्सन, 1971: 67-72)।

पुर्तगाली सरकार की 'पोलिसगार्किक' योजना में आरम्भ में केवल भारत के पश्चिमी तट पर स्थित उनके नगर शामिल थे; तथापि पुर्तगाली निजी व्यापारियों ने भारत के पूर्वी तट पर जिन एन्क्लेवों को विकसित किया उनमें कावेरी के मुख पर नागपट्टनम, मद्रास के निकट मायलापुर और पूलीकट, पांडिचेरी के समीप देवनामपट्टनम, बंगाल में हुगली इत्यादि का विकास व्यापारिक नगरों के रूप में हुआ और उन्होंने पश्चिमी तट के पुर्तगाली नगरों से संसाधनों की वसूली करने वाली तथा नियंत्रक संस्थाओं के हस्तक्षेप का प्रतिरोध किया (थॉमज, 1994; सुब्रह्मण्यम, 1990; सुब्रह्मण्यम, 1990; स्टीफन, 1997; स्टीफन, 2008: 11-21; मालेकन्डाथिल, 2010: 68-71)। पुर्तगाली निजी व्यापारी चाहते थे कि उनके नगर पुर्तगाली *एस्टादो दा इंडिया* से स्वतंत्र रहकर कार्य करें। तथापि, पुर्तगाली अधिकारी इन परिस्थितियों से प्रसन्न नहीं थे। पुर्तगाली अधिकारियों के द्वारा 1547 तथा 1568 में दो बार इन तमिल तटवर्ती निजी नगरीय बसावटों को नष्ट करने और इन निवासियों को भारत के पश्चिमी तटवर्ती सरकारी पुर्तगाली एन्क्लेवों के अधीन लाने के लिए सैन्य तैयारियां की गईं थीं (थॉमज़, 2005 : 10-11)। किंतु प्रस्तावित सैन्य अभियान नहीं किया गया तथा निजी पुर्तगाली व्यापारियों की व्यापारिक नगरीय बसावटों को धार्मिक संस्थाओं जैसे 1606 में स्थापित मायलापुर के डायोसेस और विभिन्न धार्मिक संघों विशेषकर कोरोमंडल नगरों के फ्रांसिस्कन कापुचिन्स और बंगाल में ऑगस्टीनियन्स की सहायता से उनको नियंत्रित करने की प्रक्रिया के माध्यम से भारत के पश्चिमी तट को पुर्तगाली शासन की 'पोलिसगार्किक' प्रणाली के साथ अन्ततोगत्वा एकीकृत कर लिया गया (मीर्समैन, 1982: 61-70; मालेकन्डाथिल, 2013: 185-204)।

3.5 'नगर-राज्य'

मध्यकालीन नगरों के एक अन्य समूह, जिसे हम भारत में पाते हैं, को नगर राज्यों की श्रेणी के अंतर्गत रखा जा सकता है जैसा कि इस अवधि के दौरान सुदूर दक्षिण में कालीकट तथा कोचीन के रूप में प्रकट हुए नगर इसी श्रेणी में आते हैं। ये लघु राज्य या अर्ध राज्य थे जो क्रमशः कालीकट और कोचीन के पत्तन नगरों के समीप समुद्री व्यापार से राजनीतिक प्रक्रियाओं के लिए ऊर्जा प्राप्त कर ठीक उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह इटली में वेनिस और फ्लोरेन्स में नगरों के समीप नगर-राज्य प्रकट हुए (पोलनिट्ज, 1949; लुज्जाटो, 1961; लेन, 1973); जर्मनी में ब्रेमन, ल्यूबेक, हैम्बर्ग और डेन्जिंग (डेन्जिंग अब पोलैंड है) के हैन्सिएटिक नगर (पोलनिट्स, 1953; हेलेनबेन्ज, 1956: 28-49; मालेकन्डाथिल, 1999: 3-22) और पूर्वी अफ्रीका में मोगादिशु, बरावा, पाटे, मेलिन्डे, मोम्बासा, पेम्बा, जन्जिबार, किल्वा, सोफाला और इनहैम्बेन केस्वाहिली नगर-राज्य प्रकट हुए (सिन्क्लेयर और हकान्सन, 2000:

63-78, पियर्सन, 1998)। अपने पत्तन-नगरों से समुद्री व्यापार के प्रतिलाभों के साथ कालीकट और कोचीन के नगरीय केंद्र के शासकों ने राज्य निर्माण की प्रक्रिया में एक आंतरिक भू-भाग का सृजन किया; यह ध्यान देने योग्य है कि भारत के ये नगर राज्य अपनी राजनीतिक संरचना तथा जिस रीति से वे अपनी सत्ता प्रक्रियाओं के स्थायित्व हेतु उत्पादन तथा विनिमयों को आयोजित करते थे हैनसिएटिक और इटली के नगर राज्यों से काफी भिन्न हैं (कोचीन के नगर-राज्य का अध्ययन करने के लिए देखिए मालेकन्डाथिल, 2001)। अत्यन्त गहन समुद्री व्यापार के कारण विकसित हुए पत्तन नगर भारत के नगर-राज्यों के लिए सत्ता के प्रयोग हेतु मुख्य क्षेत्र बन गए जबकि आंतरिक भू-भाग में बिखरे हुए उत्पादन केंद्र राजनीतिक विजयों द्वारा सत्ता के केन्द्र तथा पत्तनों की व्यापारिक गतिविधियों से जोड़ दिए गए। नगर-राज्य के रूप में कालीकट के अभ्युदय को कालीकट के मूल शासक पोलाथिरी को पराजित करने के पश्चात् तेरहवीं सदी में उभरते हुए समुद्री व्यापार की पृष्ठभूमि में नेडियिरप्पु स्वरूपम के प्रमुख के राजनिवास को एर्नाड (मल्लपुरम जिला) में नेडियिरप्पु के आंतरिक कृषि क्षेत्र से कालीकट के समुद्र व्यापार केंद्र को स्थानान्तरण के साथ जोड़ा जा सकता है। बाद में कालीकट के व्यापार से अर्जित सम्पत्ति और मुस्लिम व्यापारिक सहयोगियों की मदद से नेडियिरप्पु स्वरूपम के प्रमुख ने अंततोगत्वा समूथिरी या जमोरिन की उपाधि धारण की और आसपास के भू-भागों पर आधिपत्य जमा लिया और उन्हें कालीकट में समुद्री व्यापार के लिए कालीमिर्च उत्पादन का आंतरिक भू-भाग बना लिया (मालेकन्डाथिल, 1999: 9)। ठीक इसी प्रकार पेरूम्पडप्पु स्वरूपम के प्रमुख, जिसका मुख्यालय वन्नेरी के कृषि क्षेत्र में था, ने भी दक्षिण की ओर बढ़ना शुरू किया, और पहले महोदयपुरम (क्रेंगानूर) और फिर कोचीन की नई उदीयमान बसावट तक पहुँचा जहाँ उसने 1405 के आसपास अपने राजनिवास की स्थापना की। शीघ्र ही यह नगरीय इकाई के रूप में विकसित हो गया और पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात् समुद्री व्यापार की गति तीव्र होने के साथ कोचीन भारत के पश्चिमी तट पर एक प्रमुख नगर बनकर उभरा जहाँ प्रचुर व्यापारिक सम्पत्ति थी और इसके शासकों ने कालीमिर्च के उत्पादन की प्रक्रिया को कोचीन में व्यापारिक कार्यकलापों के साथ जोड़ने के उद्देश्य से कालीमिर्च उत्पादन के आंतरिक भू-भाग में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना शुरू किया (मालेकन्डाथिल, 2001: 30-33), यूरोप में अधिकतर नगर-राज्यों में जैसे हैन्सिएटिक नगरों में सत्ता व्यापारियों के हाथों में थी और उत्पादक नगरों में रहते थे जबकि कालीकट और कोचीन के नगर-राज्यों में वास्तविक सत्ता राजनीतिक शासकों के हाथों में रही; किंतु सत्ता के एक बड़े हिस्से को उनके प्रमुख व्यापारी सहयोगियों के साथ साझा किया गया। सत्ता की साझेदारी की इस प्रक्रिया में एक विदेशी मुस्लिम व्यापारी को कालीकट के विदेश व्यापार का शासन संभालने की जिम्मेदारी दी गई थी, जबकि घरेलू व्यापार की जिम्मेदारी स्थानीय मापिल्ला मुस्लिम व्यापारी को सौंपी गई थी। यह मापिल्ला मुस्लिम अंततः कालीकट के कोया के रूप में जाना गया जो कालीकट में प्रशासनिक दृष्टि से अत्यन्त ही शक्तिशाली पद बन गया। कोचीन में कोंकणी और पट्टारों के अतिरिक्त यहूदी व्यापारी तथा पुर्तगाली निजी व्यापारी कोचीन के राजा के प्रमुख व्यापारिक सहयोगी थे। कोचीन के राजा के पार्षदों और मंत्रियों के रूप में उन्होंने अत्यधिक शक्ति तथा प्रभाव का प्रयोग किया (मालेकन्डाथिल, 2007: 260-285)। तथापि उनके सत्ता संबंधों तथा समीकरणों में बार-बार परिवर्तन होते रहे जिसने नगर की आंतरिक गतिशीलता में सूक्ष्म विशेषताओं का योग किया।

3.6 सारांश

उपरोक्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि मध्यकालीन नगर की एकल विवेचना संबंधी धारणा में भारत की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में नगरों को जिन अनेक अर्थों में

अभिव्यक्त किया गया था उसके खो जाने का भय है। मध्यकालीन भारत के नगरों को समझने की अनेक संभावनाएं तथा तरीके हैं। यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक रूप से इन नगरों ने सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं के दो भिन्न समूहों, एक प्राचीनकाल से और दूसरा आधुनिक समय का, के बीच के बड़े समयान्तर को पाटने की भूमिका निभायी है। दो कालों के बीच योजक होने के अतिरिक्त मध्यकालीन नगरों की कतिपय अन्तर्भूत विशेषताएं थीं, यह उन व्यापक सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं, जिनके अंदर उनका विकास हुआ, केन्द्रीकृत तथा गहन रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3.7 अभ्यास

1) मध्यकालीन नगरों के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण कौन से हैं?

2) विद्वान मध्यकालीन यूरोपीय नगरों को किस तरह देखते हैं?

3) मध्यकालीन नगरों की प्रभुता के संबंध में हेनरी पिरेन के विचार पर टिप्पणी कीजिए।

4) 13वीं-14वीं सदियों में 'नगरीय क्रांति' के मोहम्मद हबीब के विचार का परीक्षण कीजिए।

5) विद्वानों ने उपमहाद्वीप के मध्यकालीन नगरों की किस प्रकार विवेचना की है?

6) 'वाणिज्यिक और राजनीतिक दृष्टि से पोषित नगरवाद' का विचार क्या है?

7) 'पोलिसक्रेसी' क्या है और यह किस तरह से 'पोलिसगार्किक' नगरों से भिन्न है?

8) मध्यकालीन नगरों के इतिहासलेखन की चर्चा कीजिए।

3.8 संदर्भ ग्रंथ

अबुल फजल अल्लामी, (1977) *दि आइने अकबरी,* अनु. एच. ब्लॉकमैन, भाग-I (नई दिल्लीः ओरिएंटल बुक्स रिप्रिंट कार्पोरेशन).

अब्राम्स, फिलिप, (1978) "टाउन्स एंड इकॉनॉमिक ग्रोथः सम थ्योरीज एंड प्रॉब्लम्स", फिलिप अब्राम्स और ई. ए. रिग्ले (संपा.), *टाउन्स इन सोसाइटीजः एसेज इन इकॉनॉमिक हिस्ट्री एंड हिस्टॉरिकल सोशियोलॉजी* (केम्ब्रिजः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

अरासारत्नम, सिन्नाप्पाह और अनिरूद्ध रे, (1994) *मसूलीपट्टनम एंड कैम्बे : ए हिस्ट्री ऑफ टू पोर्ट टाउन्स, 1500-1800* (नई दिल्लीः मुशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि.).

अशरफ, के.एम., (1970) *लाइफ एंड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान,* दूसरा संस्करण (नई दिल्लीः मुशीराम मनोहरलाल).

बेकर, एलन, आर.एच., (2003) *ज्यॉग्रफी एंड हिस्ट्रीः ब्रिजिंग दि डिवाइड* (केम्ब्रिजः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

बंगा, इंदु (संपा.), (1991) *सिटी इन इंडियन हिस्ट्रीः अर्बन डेमोग्राफी, सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स* (दिल्लीः मनोहर).

बंगा, इंदु (संपा.), (1992) *पोर्ट्स एंड देअर हिंटरलैंड्स इन इंडिया, 1700-1950,* (दिल्लीः मनोहर).

ब्लेक, स्टीफन, (1993) *शाहजहाँनाबादः दि सोवरेन सिटी इन मुगल इंडिया, 1639-1739* (नई दिल्लीः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

ब्रॉडेल, फर्नान्ड, (1973) *कैपिटलिज्म एंड मटीरियल लाइफ, 1400-1800*, अनु. मिरियम कोचन (न्यूयॉर्कः हार्पर एंड रो).

कॉलेवर्त, विनान्द एम., (1988) "दादू एंड दादू-पंथ : दि सोर्सेज", केरीन शोमर और डब्ल्यू एच. मैक्लिअड (संपा.) *दि सेंट्स : स्टडीज इन ए डिवोशनल ट्रेडिशन ऑफ इंडिया*, (दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास).

कैम्पोस, जे.जे.ए., (1979) *हिस्ट्री ऑफ दि पोर्तुगीज इन बेंगाल* (पटनाः जानकी प्रकाशन).

चम्पकलक्ष्मी, आर., (1996) *ट्रेड आइडियोलॉजी एंड अर्बनाइजेशन : साउथ इंडिया, 300 बी. सी एंड 1300 ए डी* (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

चंद्रा, सतीश, (2009) *एसेज़ ऑन मेडिएवल इंडियन हिस्ट्री* (नई दिल्लीः हर-आनंद पब्लिकेशन्स).

चंद्रा, सतीश (2006) *मिडिवल इंडिया*, भाग II (नई दिल्ली : हर-आनंद प्रकाशन).

चंद्रा, सतीश (1997) *मिडिवल इंडियाः दिल्ली सल्तनत (1206-1526)*, भाग I (नई दिल्लीः हर-आनंद पब्लिकेशन).

चट्टोपाध्याय, बी.डी., (1997) *दि मेकिंग ऑफ अर्ली मिडिवल इंडिया* (नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

चिनॉय, शमा मित्र, (1998) *शाहजहाँनाबादः ए सिटी ऑफ देल्ही, 1638-1857* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स).

कॉक्स, के. आर., (1976) "अमेरिकन ज्यॉग्रफीः सोशल साइन्स इमर्जेन्ट," *सोशल साइन्स क्वार्टरली*, भाग 57, पृ. 182-207.

कुन्हा, जोआओ मैनुएल डी अल्मीदा टेलेस इ, (1995) *इकोनोमिया डी अम इम्पीरियो : इकोनोमिया पॉलिटिका डो एस्टाडो डो इंडिया एम टॉर्नो डो मार अरैबिको इ गोल्फो पर्सिकोः एलीमेन्टोज कॉन्जुन्टूराइसः 1595-1635*, मेस्ट्राडो डिजर्टेशन, फैकुलाडेडे डी सिएनसियास सोशियाइस इ ह्यूमन्स, यूनिवर्सिडेड नोवा डी लिस्बोआ.

डेविड एन. लॉरेन्ज़न, (1981) "दि कबीर पंथः हेरेटिक्स टू हिन्दूज'', डेविड एन. लॉरेन्जन, (संपा.), *रिलीजियस चेन्ज एंड कल्चरल डोमिनेशन* (मैक्सिको : कॉलेजिओ डि मैक्सिको).

डॉब, मॉरिस, (2006) "ए रिप्लाई", रोडनी हिल्टन, (संपा.) *ट्रांजिशन फ्रॉम फ्यूडलिज्म टू कैपिटलिज्म* (नई दिल्लीः आकार बुक्स), पृ. 59-61.

डॉब, मॉरिस, (2007) *डेवेलपमेंट ऑफ कैपिटलिज्म* (नई दिल्लीः राउटलेज/आकार बुक्स).

फारूक, ए.के. एम., (1997) *रोड्स एंड कम्युनिकेशन्स इन मुगल इंडिया* (दिल्लीः इदाराह-ए-अदबियात-ए दिल्ली).

फूको, मिशेल, (1986) "ऑफ अदर स्पेसेज", *डायक्रिटिक्स*, भाग 16 सं. 1, स्प्रिंग, पृ. 22-27.

फूको, मिशेल, ग्वेनडोलिन राइट और पॉल रेनबो, (1982) "स्पेशियलाइजेशन ऑफ पॉवर : ए डिस्कशन ऑफ दि वर्क ऑफ मिशेल फूको", *स्काइलाइन*, पृ. 14-20.

फूको, मिशेल, (1980) *पॉवर/नॉलेजः सेलेक्टेड इन्टरव्यूज एंड अदर राइटिंग्स, 1972-77* (लंदनः पैन्थिऑन बुक्स).

फ्रेडरिक, सीजर (1969), रिचर्ड हैक्ल्युट, *दि प्रिंसिपल नेविगेशन्स, वोयेजेज, ट्रैफिक्स एंड डिस्कवरीज ऑफ दि इंग्लिश नेशन मेड बाई सी ऑर ओवरलैंड टू दि रिमोट एंड फार्देस्ट डिस्टैंट क्वार्टर्स ऑफ दि अर्थ एट एनीटाइम विदिन दि कम्पास ऑफ दीज 1600 ईयर्स*, भाग V न्यूयॉर्क.

फ्राइकनबर्ग, आर. ई. *(1986) दिल्ली थ्रू दि एजेज : सेलेक्टेड एसेज इन अर्बन हिस्ट्री, कल्चर एंड सोसाइटी*, (नई दिल्लीः ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

फन्डो जेराल, बी.एन.एल., कोडिस सं. 1980 "लिव्रोदास डिस्पेजास डे अम ऑर्सेन्टो", *टैबोआडा* सेक्शन.

गोडिन्हो, विटोरिनों मगालहेज, (1982) *ओएस डेस्कोब्रिमेन्टोज ई अ इकोनोमिया मुंडियाल*, भाग III, लिस्बोआ.

ग्रेगरी, डेरेक, (2007) "दि प्रोडक्शन ऑफ स्पेस" आर. जे. हार्वी, डेविड, *दि लिमिट्स टू केपिटल* (लंदन).

ग्रेवाल, जे.एस. और इंदु बंगा, (1985) *स्टडीज इन अर्बन हिस्ट्री* (अमृतसरः गुरू नानक देव यूनिवर्सिटी).

ग्रेवाल, जे.एस., (2006) "सूफिज्म इन मिडिवल इंडिया", जे.एस. ग्रेवाल, (संपा.) *रिलीजियस मूवमेंट्स एंड इंस्टीट्युशन्स इन मिडिवल इंडिया* (हिस्ट्री ऑफ साइन्स, फिलॉसोफी एंड कल्चर इन इंडियन सिविलाइजेशन), भाग VII: 2 (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

हबीब, इरफान, (2005) "अकबर एंड टेक्नोलॉजी", इरफान हबीब (संपा.) *अकबर एंड हिज इंडिया* (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

हबीब, इरफान, (1978) "इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ दि डेल्ही सल्तनतः ऐन एसे इन इन्टरप्रेटेशन", *इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू*, भाग IV, सं. 2, पृ. 289-98.

हबीब इरफान, (1969) "दि हिस्टॉरिकल बैकग्राउन्ड ऑफ दि पॉपुलर मोनोथीस्टिक मूवमेंट्स ऑफ दि 15वीं-17वीं सेंचुरीज", बिशेश्वर प्रसाद (संपा.), *आइडियाज इन हिस्ट्री* (बॉम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस), पृ. 6-13.

हबीब, इरफान, (1999) *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, 1556-1707*, (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

हबीब, मोहम्मद, (1952) "इन्ट्रोडक्शन", एच. एम. इलियट और जॉन डाउसन (संपा.), *हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिएन्स* (अलीगढ़), पृ. 55-78.

हार्वी, डेविड, (1973) *सोशल जस्टिस एंड दि सिटी*, (बाल्टिमोरः जॉन हॉपिकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस).

हार्वी, डेविड, (2001) *स्पेसेज ऑफ कैपिटल : टुर्वड्स ए क्रिटिकल ज्यॉग्रफी* (न्यूयॉर्कः राउटलेज).

हार्वी, डेविड, (1985) *दि अर्बनाइजेशन ऑफ कैपिटल : स्टडीज इन दि हिस्ट्री एंड थ्योरी ऑफ कैपिटलिस्ट अर्बनाइजेशन* (बाल्टीमोरः जॉन हॉपिकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस).

हसन, एस. नुरूल, (2008) *रिलीजन, स्टेट एंड सोसाइटी इन मिडिवल इंडिया*, सतीश चंद्र द्वारा संपादित (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

गुप्ता, आई. पी., (1986) *अर्बन ग्लिम्पसेज ऑफ मुगल इंडिया : आगरा दि इम्पीरियल केपिटल, 16वीं एंड 17वीं सेंचुरीज* (आगराः डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस).

इराकी, शहाबुद्दीन, (2009) *भक्ति मूवमेंट इन मिडिवल इंडियाः सोशल एंड पॉलिटिकल पर्सपेक्टिव्स* (दिल्लीः मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिव्यूटर्स).

जॉनसन, इत्यादि, (संपा.) (2000) *दि डिक्शनरी ऑफ ह्यूमन ज्यॉग्रफी* (ऑक्सफोर्ड : ब्लैकवेल).

केलेनबेन्ज, हर्मन, (1956) "डेर फेफरमार्क्ट अम 1600 अन्ड डी हन्स्टाटे", हैनसिशे जेसशिस्ट्सब्लाटर LXXIV, पृ.28-49.

खान, मकसूद अहमद, (2004) "सूफीज एंड देअर कंट्रीब्यूशन इन दि प्रोसेस ऑफ अर्बनाइजेशन", नीरू मिश्र, (संपा.) *सूफीज एंड सूफीज्म : सम रिफलेक्शन्स* (नई दिल्लीः मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिव्यूटर्स).

लेन, एफ. सी., (1973) वेनिसः *ए मेरिटाइम रिपब्लिक*, (बाल्टिमोरः जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस).

लेफेब्र, हेनरी, (1991) *दि प्रोडक्शन ऑफ स्पेस*, अनु. डोनाल्ड निकोल्सन-स्मिथ, (लदनः ब्लैकवेल).

लोगान, डोनाल्ड एफ., (2002) *ए हिस्ट्री ऑफ चर्च इन दि मिडिल एजेज* (लंदन : राउटलेज).

लॉरेन्जेन, डेविड एन., (1987) "दि कबीर पंथ एंड सोशल प्रोटेस्ट", केरीन शॉमर और डब्ल्यू. एच. मैक्लिओड (संपा.), *दि सेंट्सः स्टडीज इन ए डिवोशनल ट्रेडिशन ऑफ इंडिया*, (दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास).

लुज्जातो, जी., (1960) *स्टोरिआ इकॉनॉमिका डी वेनेजिया डॉल XI अल्स XVI सेकोलो* (वेनेजिया).

मालेकन्डाथिल, पायस, (2009) "ए सिटी इन स्पेस एंड मेटाफरः ए स्टडी ऑन दि पोर्ट-सिटी ऑफ गोवा, 1510-1700", *स्टडीज इन हिस्ट्री,* भाग 25, सं. 1, पृ. 13-38.

मालेकन्डाथिल, पायस, (2010) "स्पेशियलाइजेशन एंड सोशल इंजीनियरिंग : रोल ऑफ सिटीज ऑफ कोचीन एंड गोवा इन शेपिंग दि *एस्टाडो डा इंडिया*, 1500-1663, जोआओ पाउलो ओलिवेरिया ए कोस्टा और विटोर लुइस गोस्पार रोड्रिग्स (संपा.), *ओ एस्टाडो डा इंडिया ए ओस डेसाफिओस यूरोपियस : एक्ट्स डो XII सेमिनारिओ इंटरनेसिओना डी हिस्टोरिया इन्डो-पोर्तुगीजिया*, लिस्बोआ, पृ. 301-328.

मालेकन्डाथिल, पायस (2010) *मैरीटाइम इंडिया : ट्रेड, रिलीजन एंड पॉलिटी इन दि इंडियन ओशन*, (नई दिल्ली : प्राइमस बुक्स).

मालेकन्डाथिल, पायस, (2013) *दि मुगल्स, दि पोर्तुगीज एंड इंडियन ओशनः चेन्जिंग इमेजरीज ऑफ मेरीटाइम इंडिया* (नई दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

मालेकन्डथिल, पायस, (2001) *पोर्तुगीज कोचीन एंड दि मैरीटाइम ट्रेड ऑफ इंडिया, 1500-1663*, (ए वॉल्युम इन दि साउथ एशियन स्टडी सिरीज ऑफ हाइडेल बर्ग यूनिवर्सिटी, जर्मनी) (नई दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स एंड डिक्ट्रिब्यूटर्स).

मालेकन्डाथिल, पायस (1999) *दि जर्मन्स, दि पोर्तुगीज एंड इंडिया* (मुंस्टर : एल आई टी वेर्लाग).

मालेकन्डाथिल, पायस, (2007) "विन्डस ऑफ चेन्ज एंड लिंक्स ऑफ कन्टीन्युटी : ए स्टडी ऑन दि मर्चेन्ट ग्रुप्स ऑफ केरल एंड दि चैनेल्स ऑफ देअर ट्रेड, 1000-1800 ए डी," *जर्नल ऑफ दि इमॉनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ दि ओरिएन्ट*, भाग 50: 2-3 पृ. 259-286.

मैथ्यू, के.एस. और अफजल अहमद (संपा.), (1990) *इमर्जेन्स ऑफ कोचीन इन दि प्री इन्डस्ट्रियल एराः ए स्टडी ऑफ पोर्तुगीज कोचीन* (पांडिचेरीः पांडिचेरी यूनिवर्सिटी).

मीर्समैन, ए., (1962) *दि फ्रांसिस्कन्स इन तमिलनाडु* (शोनेक-बेकेनरीड).

मिश्रा, एस.सी., (1985) "सम आपेक्ट्स ऑफ दि सैल्फ एडमिनिस्ट्रिंग इंस्टीट्युशन्स इन मिडिवल इंडियन टाउन्स", जे.एस. ग्रेवाल और इंदु बांगा, *स्टडीज इन अर्बन हिस्ट्री,* (अमृतसरः गुरू नानक देव विश्वविद्यालय).

मिश्रा, एस.सी., (1964) *मुस्लिम कम्युनिटीज इन गुजरात* (बॉम्बे : एशिया पब्लिशिंग हाउस).

मान्सरेट, एन्टोनिओ (2003) दि कमेंट्री ऑन हिज जर्नी टू दि कोर्ट ऑफ अकबर (नई दिल्लीः एशियन एजुकेशनल सर्विसेज).

मूसवी, शिरीन, (2008) *पीपुल, टैक्सेशन एंड ट्रेड इन मुगल इंडिया*, (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

मूसवी, शिरीन, (1987) *दि इकॉनॉमी ऑफ मुगल अम्पायर सी. 1595 : ए स्टैटिस्टिकल स्टडी*, (नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

मोरलैंड, डब्ल्यू. एच., (1979) *फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब : स्टडी इन इंडियन इकॉनॉमिक हिस्ट्री* (नई दिल्लीः ओरिएंटल बुक्स रिप्रिंट).

मोरलैंड, डब्ल्यु. एच., (1962) *इंडिया ऐट दि डेथ ऑफ अकबर : ऐन इकॉनॉमिक हिस्ट्री* (दिल्लीः आत्माराम एंड सन्स).

मन्डी, पीटर, (1914) *दि ट्रैवेल्स ऑफ पीटर मन्डी इन यूरोप एंड एशिया, 1608-67*, आर. टेम्पल द्वारा संपादित, भाग II (लंदन).

नकवी, एच.के., (1972) *अर्बनाइजेशन एंड अर्बन सेंटर्स अंडर दि ग्रेट मुगल, 1556-1707: ऐन एसे इन इंटरप्रेटेशन* (शिमलाः इंडियन इंस्टीट्युट ऑफ एडवान्स्ड स्टडी).

नकवी, एच.के., (1968) *अर्बन सेंटर्स एंड इंडस्ट्रीज इन अपर इंडिया, 1556-1803* (बॉम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस).

पियरसन, एम.एन., (1972) "इंडीजिनस डोमिनैन्स इन कोलोनियल इकॉनॉमी – दि गोवा रेन्डस (1600-1670)", *मारे लूसो इंडीकम*, भाग 2, पृ. 67-72.

पियर्सन, एम.एन, (1998) *पोर्ट सिटीज एंड इन्ट्रूडर्स : दि स्वाहिली कोस्ट, इंडिया एंड पोर्तुगाल इन दि अर्ली मॉडर्न एरा* (बाल्टीमोरः जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस).

पिरेन, हेनरी, (1956) *मिडिवल सिटीज : देअर ऑरिजिन्स एंड रिवाइवल ऑफ ट्रेड*, अनु. फ्रैंक डी. हैल्जी (न्यूयॉर्क).

प्लोस्जास्का, टेरेसा, (1994) "मोरल लैंडस्केप्स एंड मैनिपुलेटेड स्पेसजः जेंडर, क्लास एंड स्पेस इन विक्टोरियन रिफॉर्मेटरी स्कूल्स" *जर्नल ऑफ हिस्टॉरिकल ज्यॉग्रफी*, भाग 20, पृ. 413-429.

पोल्नित्ज, गोत्ज फ्रीहर वॉन, (1953) *फुगर अन्ड हेन्स* (तुबिन्जेन : जे.सी.बी. मोहर).

पोल्नित्ज, गोत्ज फ्रीहर वॉन, (1949) *वेनेडिग* (ऑग्स्बर्ग).

कानूनगो, के., (1965) *शेरशाह एंड हिज टाइम्स* (कलकत्ताः ओरिएन्ट लांगमैन).

रिचर्ड, जॉन एफ., (1993) *दि मुगल अम्पायर* (नई दिल्लीः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

रिजवी, एस.ए.ए., (1978) *ए हिस्ट्री ऑफ सूफिज्म इन इंडिया,* भाग 1 (दिल्ली : मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशेर्स प्राइवेट लि.). *रोस्सा, वाल्टर, (1997) इंडो-पोर्ट्यूगीज सिटीज : ए कंट्रीब्युशन टू दि स्टडी ऑफ पोर्तुगीज अर्बनिज्म इन दि वेस्टर्न हिन्दुस्तान* (लिस्बन).

शुल्ट्ज, स्टैनली के., (1985) "ऐन एप्रोच टू ए थ्योरी ऑफ अर्बनाइजेशन'', जे. एस. ग्रेवाल और इंदु बंगा (संपा.), *स्टडीज इन अर्बन हिस्ट्री* (अमृतसरः गुरूनानक देव विश्वविद्यालय)।

शर्मा, योगेश और मालेकन्डाथिल, पायस (संपा.) (2014) *सिटीज इन मिडिवल इंडिया,* (नई दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

सिल्वेरिया, लुई (संपा.), (1991) *लिव्रो डास प्लांटास डास फोर्टालेजास, सिडाडेस ई पोवोआकोएस डो एस्टाडो डा इंडिया ओरिएंटल कॉम एज डिस्क्रिक्कोज डो मैरिटिमो डोस रीनोस ए प्रोविन्सिआस ऑन्डे एस्टाडो सिटुआडास ए आउटरोस पोर्टोस प्रिंसिपाइस डाकेलाज पार्टेस* (लिस्बोआ).

सिन्क्लेयर, पॉल, जे.जे. और थॉमस हैकन्सन, (2000) "दि स्वाहिली सिटी स्टेट कल्चर", मोजेन्स हर्मन हान्सेन (संपा.), *ए. कैम्पेरेटिव स्टडी ऑफ थर्टी सिटी-स्टेट कल्चर्सः ऐन इन्वेस्टीगेशन* (कोबेनहॉन).

सिंह, भाई जोध (संपा.), (1993) *बाणी भगत कबीर जी स्तीक* (पटियाला).

सिंह, एम.पी., (1985) *टाउन, मार्केट, मिंट एंड पोर्ट इन दि मुगल अम्पायर 1556-1707* (नई दिल्लीः एडम पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स).

सोजा, एडवर्ड डब्ल्यू., (1989) *पोस्टमॉडर्न ज्यॉग्रफीजः दि रीएजर्शन ऑफ स्पेस इन क्रिटिकल सोशल थ्योरी* (लंदनः वर्सो).

साउदर्न, आर. डब्ल्यू., (1970) *वेस्टर्न सोसाइटी एंड दि चर्च इन मिडल एज* (मिडलसेक्सः हार्मोन्ड्सवर्थ).

स्टीफन, एस. जेसीला, (1997) *दि कोरोमंडल कोस्ट एंड इट्स हिंटरलैंडः इकॉनॉमी, सोसाइटी एंड पॉलिटिकल सिस्टम, 1500-1600* (नई दिल्लीः मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स).

सुब्रहमण्यम, संजय, (1990ए) *इम्प्रूवाइजिंग अम्पायर : पोर्तुगीज ट्रेड एंड सेटलमेंट्स इन दि बे ऑफ बेंगॉल, 1500-1700* (दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

सुब्रहमण्यम, संजय, (1990बी) *दि पॉलिटिकल इकॉनॉमी ऑफ कॉमर्स साउदर्न इंडिया* (कैम्बिजः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

स्वीजी, पॉल, (2006) ''ए क्रिटिक'', रोडनी हिल्टन, (संपा.) *दि ट्रांजिशन फ्रॉम फ्यूडलिज्म टू कैपिटलिज्म* (दिल्ली : आकार बुक्स).

टैवर्नियर, जीन बैप्टिस्टे, (1925) *ट्रैवेल्स इन इंडिया*, अनुवाद बी. बाल दूसरा संशोधित संस्करण डब्ल्यू क्रुक, भाग 1 (लंदन).

ठाकुर, विजय कुमार (संपा.), (1994) *टाउन्स इन प्री मॉडर्न इंडिया* (पटना : जानकी प्रकाशन).

थॉमाज, लुइस फिलिप एफ.आर.,(1994) डे सियुटा ए तिमोर (लिस्बोआ).

थॉमाज, लुई फिलिप एफ. आर., (2005) ''की नोट एड्रेस : 25 इयर्स ऑफ रिसर्च ऑन इन्डो-पोर्तुगीज हिस्ट्री'', फातिमा डा सिल्वा ग्रेसियस, सेल्सा पिंटो और चार्ल्स बॉर्जेस, *इन्डो पोर्तुगीज हिस्ट्री : ग्लोबल ट्रेन्ड्स* (पंजिम/गोवा).

त्रिवेदी, के.के., (1998) आगरा : *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल प्रोफाइल ऑफ ए मुगल सूबा, 1580-1707* (पुणे : रवीश पब्लिशर्स).

वीयोलैन्टेम, सी., (1977) "ईरेजी अर्बेन इ ईरेजी रूराली इन इटालिया डाल XI अल XIII सेकोलो", ओ. कैपितानी (संपा.), *मेडिओइवो इरेटिकेल* (बोलोग्ना).

वेबर, मैक्स, (1968) *इकॉनॉमी एंड सोसाइटी*, गुन्थेर रोथ और क्लॉस विटिच द्वारा संपादित, अनुवादः एफराइम फिशकॉफ इत्यादि (न्यूयॉर्कः बेडमिनिस्टर प्रेस).

वेबर, मैक्स, (1996) *दि सिटी*, डॉन मार्टिनडेल और जेरट्रुड न्यूविर्थ द्वारा अनुवाद और संपादन (लंदन).

विकी, जोसेफ, (1969) *डॉक्युमेंटा इंडिका*, भाग XI (लिस्बोआ).

वुड, एलेन मीक्सीन्स, (2007) *डेमोक्रेसी अगेन्स्ट कैपिटलिज्म : रिन्यूइंग हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म* (नई दिल्लीः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).